5449

बापू के सपनों का गाँव : कैसे बनायें

(ग्रामोदय का गांधीवादी दृष्टिकोण)

एन0 सी0 आर0 आई0, हैदराबाद के सहयोग से प्रकाशित पुस्तिका

सम्पादन

डॉ. अमरजीत सिंह, एसो. प्रोफे.

ग्रामीण विकास एवं व्यवसाय प्रबंधन संकाय

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,

चित्रकूट, सतना (म0 प्र0) 485334

बापू के सपनो का गॉव : कैसे बनाये?

(ग्रामोदय का गांधीवादी दृष्टिकोण)

एन0 सी0 आर0 आई0, हैदराबाद के सहयोग से प्रकाशित पुस्तिका

ग्रामीण विकास एवं व्यवसाय प्रबंधन संकाय

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट
सतना (म0 प्र0)

संरक्षकः
प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डे,
कुलपति
महात्मा गांधी चित्रकूट विश्वविद्यालय, चित्रकूट,
सतना म0 प्र0।

मार्गदर्शक :
प्रो0 आर0 सी0 सिंह, अधिष्ठाता प्रबंधन संकाय

आलेख, संकलन एवं संपादनः
- डॉ अमरजीत सिंह
- डॉ नन्दलाल मिश्र
- डॉ राजेश त्रिपाठी
- डॉ वीरेन्द्र व्यास

आलेख सहयोग :
- डॉ ब्रजेश उपाध्याय
- डॉ सी0 पी0 गूजर
- डॉ विजय सिंह परिहार
- हर्षवर्धन सिंह
- अजय कुमार

क्षेत्र प्रशिक्षण सहयोग :
- राजीव सहाय विसारिया
- मधु सिंह
- छोटेलाल वैद्य

संस्करण : प्रथम

वित्तीय स्रोत : नेशनल काउन्सिल आफ रूरल इन्स्टीट्यूट, हैदराबाद।

इस पुस्तक की सामग्री को समाज में जागरूकता के लिए उपयोग करने हेतु किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

विषय सूची

1. महात्मा गांधी : एक परिचय 1
2. महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय 2
3. राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद (एन0 सी0 आर0 आई0), हैदराबाद
4. सत्य
5. अहिंसा
6. सर्वोदय
7. आदर्श समाज का चित्र
8. सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन
9. स्वराज
10. सच्ची स्वतंत्रता
11. ग्राम गणराज्य की स्थापना के रूप में ग्राम स्वराज
12. आर्थिक स्वावलम्बन
13. सामाजिक मूल्य एवं सास्कृतिक विरासत
14. सत्ता का विकेन्द्रीकरण एवं ग्राम स्वराज
15. बुनियादी शिक्षा
16. कृषि एवं पशुपालन
17. उद्यमिता
18. युवकों की भूमिका
19. महिलाओं की सहभगिता
20. स्वदेशी की भावना
21. स्वावलम्बन एवं सहयोग
22. ग्राम एवं राष्ट्र
23. ग्राम, भारत एवं विश्व
24. क्या करें तथा कैसे करें बापू के सपनों को साकार?

कुलपति की कलम से

आज जब भोगवादी विचारों पर आधारित अमेरिका इत्यादि महाशक्तियों का वर्चस्व बिखर रहा है, ऐसे में भोग और त्याग के समन्वय पर आधारित महात्मा गांधी जैसे भारतीय मनीषियों के विचार अधिक प्रासांगिक साबित हो रहे हैं। महात्मा गांधी एवं ग्रामोदय दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ग्रामोदय एक मंत्र है जिसके देवता महात्मा गांधी एवं मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं परम पूज्य राष्ट्रऋषि नानाजी देशमुख। महात्मा गांधी कें विचारों को कार्यरूप में परिणित करके युगानुकूल पुनरर्चना का जो नजीर नानाजी ने प्रस्तुत किया है, उसका अनुसरण ही आज की समस्यायों से निराकरण का सहज मार्ग है। किन्तु इसके लिए सक्षम एवं सशक्त प्रयासों की आवश्यकता है। यह देश के युवा पीढ़ी के सकारात्मक मानसिकता पर निर्भर है। यदि देश की युवा पीढ़ी ठान ले तो भारत इक्कीसवी सदी में पुनः विश्वगुरू का दर्जा प्राप्त कर सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की पुनर्रचना का जो सपना गांधी जी ने देखा था, उसे पूरा करने का दायित्व कांग्रेस के उपर आ गया। किन्तु कांग्रेस के नेतृत्व ने देश को निराश किया। गांधी जी के ग्राम स्वराज के चिंतन के विपरीत नगरीकरण एवं बड़े उद्योगों का जाल फैला दिया गया। इसके परिणामस्वरूप गाँव गरीब होते गए और शहर अमीर होते गए। भारत गरीब हो गया और इण्डिया अमीर हो गया। यह विषमता ग्रामोदय के द्वारा ही दूर की जा सकती। गांधी जी सदैव ग्रामोदय पर बल देते थे। अपने हिन्द स्वराज एवं ग्राम स्वराज पुस्तक में उन्होने स्वतंत्रता के पूर्व ही इसकी चिंता करते हुए बताया कि देश की समृद्धि का मार्ग ग्रामोदय और सर्वोदय से होकर गुजरता है।

गांधी जी के सपनों को साकार करने के लिए जिस प्रकार के कुशल मानव संसाधन की आवश्यकता है, उसे तैयार करने के लिए महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय निरंतर प्रयासरत है। उसी दिशा में राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद (एन0 सी0 आर0 आई0), हैदराबाद के सहयोग से गांधीवादी विचारों से युक्त ग्रामीण कार्यकर्ता निर्माण करने के लिए तैयार यह पुस्तिका निश्चय ही उपरोक्त लक्ष्य की दिशा में उठाया गया एक सशक्त प्रयास है। आशा ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास है कि विश्वविद्यालय के शिक्षकों एवं छात्रों द्वारा मिलकर किया गया यह प्रयास मील का पत्थर साबित होगा।

कुलपति
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म0प्र0)

अपनी बात

एक अरब की आबादी वाला मुल्क भारत दुनिया की शीर्ष तीन आर्थिक महाशक्तियों में शामिल होने की राह पर सधे हुये कदमों से आगे बढ़ रहा है, किंतु प्रति व्यक्ति के हिसाब से भारत की औसत घरेलू आय 750 डालर है, जो सभी 53 अफ्रीकी देशों से भी 20 प्रतिशत कम है। शहरों में विकास के परिणाम तो कुछ दिख जाते हैं किन्तु भारत के गाँवों की स्थिति को सुधारने में सफलता का दर न्यून है। यहीं कारण है कि अमीर–गरीब के बीच एवं शहर–गाँव के बीच की खाईं को पाटने की जरूरत है, जिसके बिना देश का विकास संभव नहीं है।

भारत के विकास को तीन परंपरागत स्वरूपों में देखा जा सकता है– बढ़ता शहरीकरण, छोटे कस्बों एवं गाँवों में हो रहा विकास तथा वैश्वीकरण की दौर में शामिल भारत। महात्मा गांधी की समूची विचारधारा का केन्द्र नगर न होकर गाँव है। वे भारत में ऐसे आत्मनिर्भर गाँवों की रचना करना चाहते थे, जिसमें कोई भी व्यक्ति किसी का शोषण न करे। इस प्रकार के आत्मनिर्भर गाँव ही भविष्य में नगरों के स्थान पर देश एवं विश्व के विकास के केन्द्र बिन्दु बनेंगें।

पूज्य बापू का कहना था कि भारत अपने चंद शहरों में नहीं, बल्कि सात लाख गाँवों में बसा हुआ है अर्थात् गाँवों के विकास से ही भारत का विकास संभव है। शहर खाद्यान्न का उत्पादन नहीं कर सकते। शहरी आबादी के उदर–भरण का दायित्व भी ग्रामवासियों को ही निभाना पड़ता है। जिनपर देश के संपूर्ण आबादी के उदर–भरण का भार है, उनके विकास की चिंता एवं व्यवस्था करना हमारा पहला लक्ष्य होना चाहिये था। किंतु आजादी के 64 वर्ष व्यतीत होने के बावजूद इनकी निरंतर उपेक्षा हुई है, जिसका दुष्परिणाम हमारे सामने है।

वैज्ञानिक एवं तकनीकि प्रगति ने जहां विश्व को ही गाँव में बदल दिया है, वहीं पर भारत के गाँवों की दशा एवं दिशा दयनीय बनी हुई है। वे नित नये

समस्याओं के शिकार बनते जा रहे हैं। शासकीय कर्मचारी अपने दायित्वों के बजाय निजी हितों को अधिक महत्व दे रहें हैं। गाँव के विकास के नाम पर खड़ी की गयी अनेक शासकीय एवं गैर शसकीय संस्थायें स्वार्थ साधने में संलग्न हो गयीं हैं। सभी राजनीतिक दलों में गुटबाजी का तांडव अपने चरम पर है। वे जाति, धर्म, गुट, एवं संप्रदाय के आधार पर जनता को विभाजित कर वोट की राजनीति में संलग्न हैं। छल, छद्म, पाखंड, झूठ, अन्याय एवं भ्रष्टाचार के द्वारा प्राप्त सफलता को ही असली सफलता मानने का भ्रम बन गया है। अधिकाधिक धन कमाना ही जीवन का लक्ष्य बन गया है। शिक्षा का क्षेत्र भी धन कमाने का एक साधन बन गया है, जबकि गाँवों में अभी भी बहुत सारे बालक–बालिकाओं तक शिक्षा की पहुंच नहीं हो पा रही है और बचपना बाल मजदूरी में दम तोड़ रहा है। जिस राजस्व विभाग पर गाँव के भूमि संबंधी अभिलेखों के न्यायपूर्ण रख रखाव का दायित्व है उसी के कर्मचारियों के दोषपूर्ण आचरण के चलते गाँव मुकदमेबाजी में फस कर अपना सर्वनाश कर रहें हैं। करोड़ो रूपये खर्च करने के बाद भी गाँव की स्वास्थ्य सेवाये स्वयं इतनी बीमार हैं कि बीमारी को दूर करने के बजाय बीमार व्यक्तियों को महगे डाक्टरों के मकड़जाल में फसाने में सहायक बन रहीं हैं एवं डाक्टर बड़ी – बड़ी दवा कम्पनियों के एजेण्ट बन गये हैं। आज गाँव से परम्परागत मानवीयता, संवेदनशीलता एवं परस्परपूरकता की भावना समाप्त होती जा रही है।

वर्तमान विकासशील भारत के स्थान पर इसे एक सबसे विकसित देश की श्रेणी में कैसे खड़ा किया जाये? देश के विकास के लिए सबसे आवश्यक कदम इसके गाँवों का भी सर्वांगीण विकास है, जिसके बिना देश का विकास संभव नहीं है, उसे कैसे पूरा किया जाय? हमारा सपना है कि हमारा भारत एक बार फिर नैतिक रूप से मजबूत राष्ट्र के रूप में उभर कर विश्व में धर्मगुरू एवं सोने की चिड़िया बने। धर्म एवं विज्ञान का मेल हो। जनसंख्या का परिमाण स्थिर हो जाये। कोई भूखा न हो कोई नंगा न हो, कोई गरीब न हो, कोई बेरोजगार न हो, कोई बीमार न हो, कहीं बाढ़ व सूखा न हो। सभी शिक्षित हों, जागरूक हों अपने अधिकारों के लिये सजग तथा कर्तव्यों का पालन करते हों। देश में कानून सरल स्पष्ट एवं बोधगम्य हो। जनता अपना मत सरकार की उपलब्धियों एवं दक्षता के आधार पर दे तथा राजनीति में राजनीतिक दल जाति, धर्म, वर्ण, लिंग, रक्त संबंध संप्रदाय, प्रांत, भाषा एवं समुदाय इत्यादि के आधार पर समाज को विभाजित न करते हों। केन्द्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रशासन सहयोगी हो तथा गाँव के सामान्य विवाद गाँव में ही हल हों, मुकदमेबाजी न हों। गाँव को शहर से भी अधिक महत्वपूर्ण दर्जा प्राप्त हो। त्वरित न्याय हो, समान शिक्षा हो। योजनायें जरूरतमंदों तक पहुंचे। छल, दंभ, द्वेष, पाखंड, झूठ एवं अन्याय से मुक्त, ममतामय, समतामय, स्वावलंबी एवं परस्पर पूरक समाज हो। सबके चेहरों पर लाली हो, खेतों एवं जंगलों में हरियाली हो एवं सबके आंगन में खुशहाली हो।

बिजली, सड़क, पानी एवं अन्य अधोसंरचना गाँवों में भरपूर हों। स्त्री शिक्षा पर भी जोर हो। महंगाई पर नियंत्रण हो। दहेज, बालात्कार, आतंकवाद एवं भ्रष्टाचार का खौफ न हो। पर्यावरण प्रदूषण का रोग भी न हो।

उपरोक्त स्थिति तभी संभव है जब हम गांधी जी के आदर्शों का अनुसरण करें। गांधी जी ने अपनी अनेक रचनाओं में सच्चे स्वराज की कल्पना कैसे साकार हो पर विस्तार से चिंतन किया हैं। प्रस्तुत पुस्तक गांधी जी के द्वारा रचित हिंद स्वराज्य, मेरे सपनों का भारत, तथा ग्राम स्वराज में प्रकाशित उनके विचारों से संकलित करके ग्राम विकास के लिये तत्पर कार्यकर्ताओं हेतु सरल एवं बोधगम्य भाषा में निर्मित मार्गदर्शिका के रूप में तैयार की गई है। आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि जब गाँव में कार्य करने वाले अधिक से अधिक लोगों तक यह जानकारी पहुंचेगी तो, वे अपने गाँवों में सच्चा ग्राम स्वराज स्थापित करने का प्रयास करेंगे।

डॉ0 अमरजीत सिंह
विभागाध्यक्ष ग्रामीण प्रबंधन विभाग
म0गां0चि0ग्रा0वि0,चित्रकूट

महात्मा गांधी : एक परिचय
(2 अक्टूबर 1869–30 जनवरी 1948)

आधुनिक भारत के महान जननायक, समाज सुधारक, नैतिक दार्शनिक, तथा स्वतंत्रता संग्राम के संचालक, पूज्य बापू, जिनके बचपन का नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था, का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबंदर, गुजरात में हुआ था। उनके महान कार्यों को परलक्षित करके रविन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हे महात्मा की उपाधि प्रदान की थी तथा देश के लिए किए गए बलिदानों के लिए उन्हें राष्ट्रपिता का सम्मान प्राप्त हुआ।

मोहनदास के पिता करमचन्द गांधी अंग्रेजों के अधीन वाले भारत के काठियावाड़ में एक छोटी सी रियासत पोरबंदर प्रान्त के दीवान अर्थात् प्रधानमंत्री थे। उनकी माता पुतलीबाई जो करमचन्द की चौथी पत्नी थीं, पारनामी वैष्णव हिंदू समुदाय की भक्ति करने वाली महिला थीं। मई 1883 में तेरह साल की अवस्था में उनका विवाह चौदह साल की कस्तूरबा, जिसे लोग प्यार से बा पुकारते थे, से हो गया। उनकी चार संताने थी, जिनमें सभी पुत्र थे।

शैक्षणिक स्तर पर गांधी जी एक औसत छात्र थे। मैट्रिक की परीक्षा उन्होने भावनगर, गुजरात के समलदास कालेज से उत्तीर्ण की। उन्नीस वर्ष की अवस्था में 1888 में वे यूनीवर्सिटी कालेज आफ लन्दन से कानून की पढ़ाई करके बैरिस्टर बनने के लिये इंग्लैण्ड चले गये। भारत छोड़ते समय जैन भिक्षु बेचारजी के समक्ष हिंदुओं को मांस, शराब तथा संकीर्ण विचारधारा को त्यागने के लिये अपने माता जी को दिये गये एक वचन ने उनके लंदन प्रवास के समय उनको निरंतर प्रभावित किया। शाकाहारी जीवन व्यतीत करते हुये इन्होंने शाकाहारी समाज की सदस्यता ग्रहण की। इसकी कार्यकारिणी में चयनित होने के पश्चात उनका परिचय थियोसोफिकल सोसायटी के कुछ सदस्यों से हुआ, जहां से उन्हें भगवद्गीता पढ़ने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इसी दौरान उन्होंने हिन्दू, ईसाई, बौद्ध, इस्लाम एवं अन्य धर्मों के सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया। भारत वापस लौटकर उन्होंने बम्बई में वकालत प्रारंभ की जिसमें असफलता मिलने पर हाईस्कूल में अंशकालिक नौकरी करनी चाही किंतु उन्हें अस्वीकार कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने न्यायालय में वाद दायर करने वालों के लिये मुकदमें

लिखने का कार्य प्रारंभ किया किंतु एक अंग्रेज अधिकारी की मूर्खता के कारण यह कारोबार भी छोड़ना पड़ा।

दक्षिण अफ्रीका के लिये प्रस्थान(1893–1914)

एक मुकदमें की पैरवी के सिलसिले में उन्हें दक्षिण अफ्रीका से आमंत्रण प्राप्त हुआ और उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने देखा कि अंग्रेजों के शासन में भारतीयों को अत्यंत कष्ट एवं अपमान का जीवन बिताना पड़ रहा है। इसके प्रतिकार के लिये भारतीयों के पास कोई शक्ति नहीं थी। गांधी जी ने वहीं पर सत्याग्रह की शक्ति आजमाने की शुरूआत किया। प्रथम श्रेणी की वैध टिकट होने के बावजूद तीसरी श्रेणी में जाने के लिये विवश किये जाना व न जाने पर ट्रेन से बाहर फेंक दिया जाना, अनेक होटलों में प्रवेश निषेध हो जाना, न्यायालय में न्यायाधीश द्वारा गांधी जी को अपनी पगड़ी उतारने के लिये आदेश देना व न मानने पर उन्हें दंडित किया जाना इत्यादि अनेक घटनाओं ने उन्हें भारतीयों के बीच न केवल लोकप्रिय बनाया अपितु उनके अंदर सत्य एवं अहिंसा के बल पर सत्याग्रह करने की ताकत भी भर दिया। वे लंबे समय तक वहीं रहे और बीच–बीच में भारत आते–जाते रहें। जहां लोकमान्य बालगंगाधर तिलक एवं गोपालकृष्ण गोखले जैसे महान नेताओं से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ। 1915 में जब वे भारत लौटे तो यहां उनका नाम प्रसिद्ध हो चुका था। भारतीयों की दीन हीन स्थिति को जानने के लिये उन्होंने पूरे देश का दौरा किया।

स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन एवं गांधी जी का योगदान

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जब अंग्रेजों ने भारत पर अत्याचार का सिलसिला जारी रखा तो गांधी जी ने इस आंदोलन को उग्र एवं हिंसक होने से बचाया। 1918 में चम्पारन एवं खेड़ा में खाद्य फसलों को बोये जाने के बजाय अंग्रेजों द्वारा नील की खेती कराये जाने को लेकर सफल आंदोलन किया। तुर्की के खलीफा की छलपूर्वक खिलाफत छिनने की बात को लेकर हिंदू एवं मुस्लिम दोनों को मिलाकर उन्होंने एक सफल आंदोलन किया जिसे खिलाफत आन्दोलन कहा जाता है। रौलेट एक्ट एवं गांधी जी के गिरफ्तारी इत्यादि अनेक दमनात्मक कार्यों के विरोध में 13 अप्रैल 1919 को जालियावाले बाग में आयोजित सभा पर अंधाधुंध गोलीयों की वर्षा की गई,जिसमें कम से कम 800 व्यक्ति मर गये तथा 2000 से भी अधिक व्यक्ति घायल हो गये। अमृतसर में हुये जालियावाले बाग नरसंहार से आहत होकर उन्होंने असहयोग, अहिंसा तथा शांतिपूर्ण प्रतिकार को अंग्रेजों के खिलाफ शस्त्र के रूप में प्रयोग करने के उद्देश्य से असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया जिसमें, ब्रिटिश साम्राज्य की जो भी राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक संस्थायें थीं, उन सबका बहिष्कार करके सरकारी मशीनरी को ठप करने का निर्णय लिया गया। इस कार्यक्रम के प्रमुख बिंदु निम्नांकित थे–

- सरकारी वैतनिक तथा अवैतनिक पदों तथा उपाधियों का त्याग।
- सरकारी और अर्द्धसरकारी स्कूल और कालेजों का बहिष्कार।
- 1919 के अधिनियम के अंतर्गत होने वाले चुनावों का बहिष्कार।
- सरकारी अदालतों का बहिष्कार।
- विदेशी माल का बहिष्कार।
- सरकारी और अर्द्धसरकारी उत्सवों और समारोहों में उपस्थित न होना।
- भारतीयों द्वारा मैसोपोटानिया में सैनिक, क्लर्क तथा मजदूर के रूप में कार्य करने से इंकार करना।

उपयुर्क्त निषेधात्मक कार्यक्रम के अतिरिक्त कार्यक्रम का सकारात्मक पक्ष भी था, जिसमें निम्न बाते मुख्य थी–

- राष्ट्रीय स्कूल और कालेजों की स्थापना,
- पारस्परिक विवाद तय करने के लिये निजी पंचायतों का उपयोग,
- बड़े पैमाने पर स्वदेशी का प्रचार,
- हाथकरघा तथा बुनाई उद्योग का जीर्णोद्धार
- अस्पृश्यता का अंत।

यह आंदोलन शासन द्वारा पूरी शक्ति के साथ दमनचक्र जारी रखने के बावजूद सफल हो रहा था, किंतु 5 फरवरी 1922 को गोरखपुर जिले के चौरी–चौरा नामक स्थान पर हुये हिंसात्मक गतिविधियों से खिन्न होकर गांधी जी ने अन्य नेताओं के मना करने के बावजूद आंदोलन स्थगित कर दिया। स्थगित होने के बावजूद यही वह पहला आंदोलन था जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को एक जन आंदोलन एवं जनता को निर्भीक बनाने का कार्य किया।

कांग्रेस के 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में पूर्ण उत्तरदायी शासन को आधार मानकर प्रस्तुत नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया तथा शासन द्वारा स्वीकृति न मिलने की स्थिति में अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने की सहमति बनी। 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की मांग की गयी। शासन के असहयोगात्मक रवैये के चलते गांधी जी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन की घोषणा करनी पड़ी। 26 जनवरी 1930 का दिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने

भारतीय स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया। इसके बाद गांधी जी ने नमक कर लगाये जाने के विरोध में डांडी मार्च का निर्णय लिया।

12 मार्च 1930 को महात्मा गांधी और उनके द्वारा चुने हुए 79 कार्यकर्ता साबरमती आश्रम से डांडी की यात्रा प्रारम्भ की और 5 अप्रैल को डांडी पहुंच गए। 6 अप्रैल को उन्होंने डाण्डी समुद्र तट पर स्वयं नमक कानून का उल्लंघन कर सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। गांधीजी का यह कार्य भारत के विभिन्न भागों में विशाल पैमाने पर सविनय अवज्ञा के शुरू किए जाने का संकेत चिन्ह था। गांधीजी के द्वारा नमक कानून का उल्लंघन किए जाने के शीघ्र बाद आन्दोलन पूरे जोर में आ गया और इसने पूरे देश को अपने प्रभाव में ले लिया। भारत में अंग्रेजों की पकड़ को विचलित करने वाला यह एक सर्वाधिक सफल आंदोलन था, जिसमें अंग्रेजों ने 80,000 से अधिक लोगों को जेल भेजा।

गांधी जी और लार्ड इरविन के मध्य हुये समझौते के द्वारा यह आंदोलन समाप्त हुआ और इसी समझौते के शर्तों के अनुरूप लंदन में आयोजित द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए गांधी जी ने लिए प्रस्थान किया। किंतु इस सम्मेलन को महात्मा गांधी की उपस्थिति भी सफल नहीं बना पायी। यह सम्मेलन पूर्णतया असफल रहा।

अप्रैल 1942 में इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, जिसमें, यह निश्चित किया गया कि कांग्रेस किसी ऐसी स्थिति को किसी भी दशा में स्वीकार करने को तैयार नहीं हो सकती जिसमें भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के दास के रूप में कार्य करना पड़े। जुलाई 1942 में कांग्रेस कार्य समिति की वर्धा में हुई बैठक में यह तय किया गया कि, भारत की समस्याओं का हल अंग्रेजों का भारत छोड़ देने में ही है। 8 अगस्त 1942 को बम्बई में हुये कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया। कांग्रेस कार्यसमिति के समक्ष दिये अपने प्रसिद्ध व्याख्यान में गांधी जी ने "करो या मरो" का इतिहास प्रसिद्ध नारा दिया। शासन द्वारा भारतीय नेताओं को कारावास में डाल दिया गया। जिसका परिणाम जन विद्रोह के रूप में उभरा। सरकार का दमनचक्र बहुत कठोर था और क्रांति को दबाने के लिये पुलिस राज्य की स्थापना हो गयी। सरकार के विरोध में गांधी जी ने अनशन प्रारंभ कर दिया, जो 21 दिनों तक लगातार चलता रहा जिसके चलते उनके गिरते स्वास्थ्य को देखते हुए उन्हें छोड़ दिया गया। यह आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी तथा आम जनमानस की सहायता से चलाया गया, महात्मा गांधी जी द्वारा अंतिम सशक्त प्रयास था। इस आंदोलन के द्वारा राष्ट्रवाद की भावना और भी बलवती होती चली गई जिसने ब्रिटिश शासन की नींव को हिलाकर रख दिया तथा विदेशों में भी भारत के पक्ष में प्रबल जनमत तैयार किया। अमेरिका और चीन के द्वारा भारत की स्वतंत्रता के लिये ब्रिटेन पर निरंतर दबाव बनाया जाने लगा।

1946 में कैबिनेट मिशन द्वारा भारत के विभाजन के प्रस्ताव को गांधी जी ने ठुकरा देने का सुझाव दिया, क्योंकि गांधी जी किसी भी ऐसी योजना के खिलाफ थे, जो भारत को दो अलग देशों में विभाजित करती हो किंतु नेहरू और पटेल इत्यादि के समझाने पर अंततः गांधी जी ने इसे अपनी अनुमति दे दी और इस प्रकार 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता तो प्राप्त हुई किंतु देश दो भागों में विभाजित हो गया। इससे राष्ट्रीय एकता के पुजारी गांधी जी के हृदय को गहरी ठेस पहुंची। इसके बावजूद उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता एवं एकता का प्रचार जारी रखा। भारत–पाकिस्तान विभाजन परिषद द्वारा बनाये गये समझौते के अनुसार भारत द्वारा पाकिस्तान को 55 करोड़ रूपये देने का निर्णय किया गया। किंतु कांग्रेस किसी भी कीमत पर यह मुआवजा देना नहीं चाहती थी। साथ ही वह सभी मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने की मांग करती थी। इसके विरोध में गांधी जी ने अनशन प्रारंभ कर दिया और भारत सरकार को मुआवजा प्रदान करना पड़ा।

30 जनवरी 1948 को बिड़ला भवन में अपने नित्य समय पर प्रार्थना में जाते समय गांधी जी की नाथूराम गोडसे द्वारा गोली मारकर हत्या कर दी गई। नाथूराम गोडसे एक हिंदू राष्ट्रवादी कट्टरपंथी दल हिंदू महासभा का सदस्य था, जिसने गांधी जी के द्वारा पाकिस्तान को मुआवजा भुगतान करने की प्रक्रिया को देश को कमजोर करने वाला कदम बताते हुये इसका विरोध किया था। नाथूराम गोडसे और उसके सह–षड़यंत्रकारी नारायण आप्टे को फांसी दे दी गई।

गांधी जी के प्रमुख सिद्धांत

सत्य

गांधी जी ने अपना जीवन सत्य, या सच्चाई की व्यापक खोज में समर्पित कर दिया। उन्होंने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अपनी स्वयं की गलतियों और खुद पर प्रयोग करते हुये सीखने की कोशिश की। उन्होंने अपनी आत्मकथा को **"द स्टोरी आफ माय एक्सपेरीमेंटस विथ ट्रुथ"** नाम दिया।

गांधी जी ने कहा कि सबसे महत्वपूर्ण लड़ाई लड़ने के लिये अपने दुष्टात्माओं जैसे भय और असुरक्षा जैसे तत्वों पर विजय पाना है। गांधी जी ने अपने विचारों को सबसे पहले उस समय संक्षेप में व्यक्त किया जब उन्होंने कहा कि **"भगवान ही सत्य हैं"** बाद में उन्होंने इस कथन को **"सत्य ही भगवान है"** में बदल दिया। इस प्रकार सत्य गांधी दर्शन का आधार है। सत्य जिस जिस रूप में प्रकट होता गया उसे स्वीकार करने से वे पीछे कभी नहीं हटे।

अहिंसा

हालांकि गांधी जी अहिंसा के सिद्धांत के प्रवर्तक बिल्कुल नहीं थे, किंतु इसे बड़े पैमाने पर राजनैतिक क्षेत्र में इस्तेमाल करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। अहिंसा

और अप्रतिकार का भारतीय धार्मिक विचारों में एक लंबा इतिहास है और इसके हिंदु, बौद्ध, जैन, यहूदी और ईसाई समुदायों में अवधारणाएं हैं। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा "**द स्टोरी आफ माय एक्सपेरीमेंटस विथ ट्रुथ**" में दर्शन और अपने जीवन के मार्ग का इस प्रकार वर्णन किया है:–

"जब मैं निराश होता हूं तब मैं याद करता हूं कि हालांकि इतिहास सत्य का मार्ग होता है किंतु प्रेम इसे सदैव जीत लेता है। यहां अत्याचारी और हत्यारे भी हुये हैं और कुछ समय के लिये वे अपराजेय लगते थे किंतु अंत में उनका पतन ही होता है–इसका सदैव विचार करें।"

"उन्होंने यह भी कहा कि मरने के लिये मेरे पास बहुत से कारण हैं किंतु मेरे पास किसी को मारने का कोई भी कारण नहीं है।"

उन्होंने कहा है कि– मेरे निरंतर अनुभव ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि सत्य से अलग कोई ईश्वर नहीं है और सत्य की सिद्धी का एकमात्र उपाय अहिंसा है। अहिंसा की अखंड साधना से ही सत्य का पूर्ण साक्षात्कार किया जा सकता है। गांधी जी के अनुसार अहिंसा वह सिद्धांत या नीति है जिसमें अपने विरोधी को प्रेम से जीता जाता है, घृणा या लड़ाई से नहीं। गांधी जी बाइबिल के इस वाक्य के अनुयायी हैं–"पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।"

सत्याग्रह

सत्य और अहिंसा का अटूट संबंध ही सत्याग्रह को जन्म देता है। वस्तुतः सत्याग्रह ही सामाजिक क्रांति का गांधीवादी तरीका है। सत्याग्रह का शब्दार्थ है– सत्य का आग्रह अर्थात् सत्य पर अडिग रहना। सत्य क्या है, इसका निर्णय कैसे हो? जब अहिंसा का पालन करते हुये मनुष्य आत्मशुद्धि कर लेता है तो उसकी अंतरात्मा ही सत्य का दर्पण बन जाती हैं। जब मनुष्य को यह विश्वास हो जाए कि वह सत्य के मार्ग पर चल रहा है, तब चाहे उसे जितनी भी बाधाएं और यातनाएं क्यों न सहन करनी पड़े अपने मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं होना ही सत्याग्रह है। सत्य की सिद्धी कठिन तो है, परंतु अंततः विजय उसकी ही होती है। "सत्यमेव जयते नानृतम्" अर्थात् सत्य की जय होती है, अनृत या असत्य की नहीं। अतः सत्याग्रही कभी पराजय स्वीकार नहीं करता। वह किसी भी परिस्थिति में सत्य के पक्ष से विचलित नहीं होता। स्वयं सत्य पर दृढ़ रहकर ही वह अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन करने को तत्पर होता है–उसे पीड़ा पहुंचाकर नहीं क्योंकि अहिंसा सत्याग्रह की आवश्यक शर्त है। सत्याग्रही अपने आपको कष्ट पहुंचाकर जैसे कि अनशन करके या कारावास की यातना सहन करके विरोधी के मन को आंदोलित कर देता है, जिससे वह अंततः अन्याय के मार्ग से हटकर न्याय के मार्ग पर चलने के लिये नैतिक रूप से विवश हो जाता है। इसी सत्याग्रह की विधि को गांधी जी ने स्वराज की प्राप्ति के लिए अपनाया।

ब्रह्मचर्य

जब गांधी जी सोलह साल के हुए तब उनके पिताश्री की तबियत बहुत खराब थी। उनके पिता की बीमारी के दौरान वे हमेशा उपस्थित रहते थे, क्योंकि वे अपने माता पिता के प्रति अंत्यंत समर्पित थे। यद्यपि गांधी जी को कुछ समय राहत देने के लिये एक दिन उनके चाचा जी आये, वे आराम के लिये शयनकक्ष पहुंचे जहां उनकी शारीरिक अभिलाषाएं जागृत हुईं और उन्होंने अपनी पत्नी से प्रेम किया। नौकर के जाने के पश्चात थोड़ी ही देर में खबर आई कि गांधी जी के पिता का अभी देहांत हो गया है, गांधी जी को जबरदस्त अपराध महसूस हुआ और इसके लिये वे अपने आप को कभी माफ नहीं कर सकते थे। उन्होंने इस घटना का जिक्र दोहरी शर्म में किया। इस घटना का गांधी जी पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा और वे 36 के उम्र में ब्रह्मचर्य की ओर मुड़ने लगे, जबकि उनकी शादी हो चुकी थी।

यह निर्णय ब्रह्मचर्य के दर्शन से पूरी तरह प्रभावित था। आध्यात्मिक और व्यवहारिक शुद्धता बड़े पैमाने पर ब्रह्मचर्य और वैराग्यवाद से जुदा होता हैं। गांधीजी ने ब्रह्मचर्य को भगवान के करीब आने और अपने को पहचानने का प्राथमिक आधार के रूप में देखा था। अपनी आत्मकथा में वे अपनी बचपन की दुल्हन कस्तूरबा के साथ अपनी कामेच्छा और ईर्ष्या के संघर्षों को बताते हैं, उन्होंने महसूस किया कि यह उनका व्यक्तिगत दायित्व है कि उन्हें ब्रह्मचर्य रहना है ताकि वे बजाय हवस प्रेम को सीख पायें। गांधीजी के लिये ब्रह्मचर्य का अर्थ था "इंद्रियों के अंतर्गत विचारों, शब्द और कर्म पर नियंत्रण।"

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय

आध्यात्मिक आस्था एवं और अनभूति का केन्द्र चित्रकूट प्राचीन काल से ही महिमान्वित रहा है। यह अरण्य तीर्थ राम कथा के अनेक प्रसंग स्थलों का साक्षी तो है ही शिक्षा, अनुसंधान और स्वध्याय के विश्व के प्राचीनतम केन्द्रों में से एक है। महर्षि अत्रि और अनसूया द्वारा स्थापित विश्व का प्रथम अध्ययन केन्द्र यही स्थित था। चित्रकूट की पूण्यभूमि महर्षि सुतिक्षण, भारद्वाज, सरभंग, बाल्मीकि आदि महापुरूषों की साधना स्थली रही है। देश के सभी भागों से विद्यार्थी यहां शिक्षा के लिये ऋषियों–मुनियों के आश्रम में आते थे। चित्रकूट में प्रभु राम ने वन प्रान्तर में रहने वाले वनवासी बन्धुओं और जीव–जन्तुओं के पारस्परिक मेल से युगानुकूल सामाजिक संरचना का संदेश दिया था। आदर्श समाज की प्रेरणा देने वाले ग्रंथ श्रीरामचरितमानस की रचना की प्रेरणा भी महाकवि गोस्वामी तुलसीदास को इसी क्षेत्र में मिली थी।

कालांतर में समय की उपेक्षा और संसाधनों के अभाव से चित्रकूट का विकास प्रभावित हुआ। कृषि और उद्योंगों के अपर्याप्त विकास ने गाँवों को अभावग्रस्त बना दिया। ग्रामीण भारत के सर्वांगीण विकास और भविष्य की पीढ़ी के नवनिर्माण के लिये पुण्य सलिला मंदाकिनी के नैसर्गिक रम्य तट पर 12 फरवरी 1991 को महाशिवरात्री के पावन पर्व पर मध्यप्रदेश शासन के एक पृथक अधिनियम (9, 1991) द्वारा महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना सतना जिले के चित्रकूट (म0प्र0) में की गई। विश्वविद्याालय की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य पूज्य बापू जी के ग्रामीण विकास की परिकल्पना को कार्यान्वित करने के लिये बौद्धिक मानव संसाधन तैयार करना तथा विकसित तकनीकों का प्रसार करना है।

ग्रामोदय विश्वविद्यालय की समस्त गतिविधियों का लक्ष्य ग्रामीण विकास है। विश्वविद्यालय बिगत दो दशक से शिक्षा, शोध, प्रसार और प्रशिक्षण की गतिविधियों से ग्रामीण विकास के सभी आयामों पर अपने योगदान की छाप छोड़ने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय तकनीक विकास, ग्रामीण जीविकोपार्जन के लिए अक्षय कृषि की विधियों के अनुसंधान और जागरूकता के लिए जन

शिक्षण के महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न है। ग्रामीण क्षेत्रों की बेहतरी, वैकल्पिक उर्जा के उपयोग, कारीगरों के कौशल में बृद्धि और महिलाओं के सशक्तीकरण में विश्वविद्यालय की महती भूमिका है।

विश्वविद्यालय का कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण मध्यप्रदेश है। विश्वविद्यालय ने शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनेक दूरस्थ शिक्षा अध्ययन केन्द्रों की स्थापना की है।

ग्रामीण विकास से संबद्ध उच्च शिक्षा के क्षेत्र में और गाँवों के विकास के अभिनव माडल तैयार करने में विश्वविद्यालय की अहम भूमिका है। आज ग्रामोदय संस्कृति विकास और आधुनिकता को जोड़कर एक नवीन दर्शन प्रस्तुत कर रहा है।

महात्मा गांधी के ग्राम विकास का दर्शन विश्वविद्यालय का शाश्वत प्रेरणा स्रोत है। विश्वविद्यालय के कार्यों में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिये शिक्षा एवं तकनीकि ज्ञान प्रदान करना सबसे प्रमुख है। विश्वविद्यालय ग्रामीण विकास के समस्त आयामों पर उच्च शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार से आवश्यक मानव संसाधन तैयार करने के लिये प्रतिबद्ध है। मूल्य और सामाजिक उत्तरदायित्व आधारित उच्च शिक्षा से युवा पीढ़ी में ग्राम जीवन की समझ और समस्याओं को हल करने की संवेदनशीलता तथा कौशल विकसित करने हेतु विश्वविद्यालय सतत् प्रयत्नशील है। विश्वविद्यालय का लक्ष्य ग्रामीण विकास के लिये आवश्यक प्रविधियों को विकसित करना, ग्रामीण समस्याओं के निदान के लिये क्रियात्मक शोध को बल देना, और जनशिक्षण के लोकव्यापीकरण से ग्रामीण भारत के सशक्तिकरण में योगदान करना है। ग्रामीण विकास के क्षेत्र में विशेषज्ञ सेवाओं के विस्तार हेतु केन्द्रों की स्थापना, ग्राम विकास योजनाओं के निर्माण, परिचालन और मूल्यांकन में शासन का सहयोग एवं इस क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं के साथ ज्ञान और अनुभव का आदान–प्रदान करना विश्वविद्यालय के उद्देश्यों में शामिल है।

विश्वविद्यालय की गतिविधियों के प्रमुख आयाम हैं– शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण एवं प्रसार। ग्रामीण विकास के लिये वांछित मानव संसाधन तैयार करने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय में प्रबंधन, विज्ञान और तकनीकि, कृषि और पशु विज्ञान, स्वास्थ्य और पर्यावरण, कला, दस्तकारी, कौशल एवं डिजाइन, योग और आयुर्वेद आदि अकादमिक धाराओं में स्नातक, परास्नातक, पत्रोपाधि, प्रमाणपत्र एवं अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम नियमित एवं दूरवर्ती शिक्षण पद्धति से संचालित किये जाते हैं।

विश्वविद्यालय क्रियात्मक शोध पर बल देता है। विज्ञान, कृषि, तकनीक, कला और समाज विज्ञान के क्षेत्र में किए जा रहे शोध कार्यो से आम ग्रामीणजनों की दैनन्दिन समस्याओं का समाधान मिल सके यही प्राथमिकता है। विश्वविद्यालय वैकल्पिक उर्जा के प्रयोग, ग्रामीण उत्पादों की गुणवत्ता वृद्धि, कृषि के नवीन यंत्र, स्वच्छता और स्वास्थ्य, ग्रामीण बेरोजगारी का उन्मूलन, महिला सशक्तिकरण,

परंपरागत ज्ञान व विज्ञान के नवीन प्रयोग, कृषि की उन्नत पद्धति, विकास संप्रेषण और स्थानीय कला रूपों का संरक्षण और संवर्धन के साथ ही शोध कार्यों को बढ़ावा देता है और शोध के निष्कर्षों को व्यवहारिक बनाकर आम लोगों तक पहुंचाने का प्रयास करता है। विस्तार कार्यक्रमों में रोजगार योजनाओं को संचालित करना, ग्रामीण बेरोजगारी के हल के लिये उद्यमिता एवं स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा देना, विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में सूचनाओं का संकलन और संग्रहण करना, शासकीय और अशासकीय योजनाओं का निर्माण उनका संचालन और मूल्यांकन, ज्ञान के प्रचार--प्रसार के लिये सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला और कृषक गोष्ठियों का आयोजन प्रमुख है।

विश्वविद्यालय की गतिविधियां देश के अनेक शीर्षस्थ सरकारी और गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर सफलतापूर्वक संचालित की जा रहीं हैं। आसपास के वातावरण के लिये संवेदनशीलता से विचार कर व्यावहारिक समाधानों की पैरवी करना भी विश्वविद्यालय के विस्तार कार्यक्रमों का प्रमुख हिस्सा है। दो दशक में विश्वविद्यालय ने ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अपने चिन्तन, प्रयोग और योगदान से गहरी छाप छोड़ी है।

राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद(एन.सी.आर.आई) हैदराबाद

भारत सरकार द्वारा सन् 1950 में **एन.सी.आर.आई** की स्थापना की गयी। **एन. सी.आर.आई** ग्रामीण उच्च शिक्षा के प्रोत्साहन से जुड़ी विभिन्न सरकारी एवं गैरसरकारी संगठनों, विश्वविद्यालयों एवं राज्य स्तरीय विभिन्न परियोजनाओं के लिए एक उत्प्रेरक/परिवर्तनकारी संगठन के रूप में कार्य करती रही है। **एन.सी. आर.आई** का ग्रामीण उच्च शिक्षा में भागीदारी का उद्देश्य ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने वाली आधार व्यवस्था का कार्य करना है। विशेष रूप से इसका लक्ष्य नई तालीम (गांधीवादी बुनियादी शिक्षण) के प्रचार में संलग्न संस्थाओं की आवश्यकताओं को पूरा करना और इस प्रयोजन हेतु शिक्षक प्रशिक्षण सुविधाओं को सशक्त करना, विस्तृत योजनाओं के माध्यम से समुदाय तक विस्तार सेवाओं को पहुंचाने में सहायता करना और उभरते ग्रामीण व्यवसायों के लिए उपयोगी रूपरेखा वाले पाठ्यक्रमों को बनाना, ग्रामीण संस्थाओं के लिए व्यवहारिक अनुभव आधारित पाठ्यक्रम, विज्ञान और तकनीक को महत्व देते हुए इन सभी संस्थाओं की विषयवस्तु को उपयोगी बनाना, सामाजिक एवं ग्रामीण विकास के लिए अनुसंधान को एक उपकरण के रूप मे उभारना एवं ग्रामीण संस्थानों से सरोकार रखने वाले सभी विषयों पर भारत सरकार को सलाह देना है।

इन वर्षों में कई प्रमुख हस्तियो ने एन. सी. आर. आई. के साथ काम किया है जिनमें डा. आराम शाह (पूर्व सांसद, राज्य सभा) और डॉ. एल. सी. जैन (योजना आयोग के पूर्व सदस्य/दक्षिण अफ्रिका में भारत के उच्चायुक्त) प्रमुख हैं। इन्होंने विभिन्न संगठनों में मानद अध्यक्ष के रूप में काम किया है। डॉ. एस. वी. प्रभात परिषद के वर्तमान अध्यक्ष है।

एन.सी.आर.आई के कार्यवाहक समूह में शैक्षणिक, प्रशासनिक, प्रबंधक और सूचना प्रौद्योगिकी सहित विभिन्न क्षेत्रों के अनुभव प्राप्त सदस्य शामिल हैं। अध्यक्ष, सचिव सदस्य, विभागों के संयोजक, परियोजना समन्यवक परियोजना अधिकारी, शोध विश्लेष्क, प्रकाशन विभाग के सदस्य,, परियोजना मूल्यांकन और

निगरानी दल एक इकाई समूह के रूप में कार्य करता है। एन. सी..आर. आई. मानव संसाधन विकास, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के सतत और सर्वांगीण विकास की दिशा में कार्यरत प्रणालियों के बीच घनिष्ठ संपर्क और सहयोग निर्माण का कार्य करता है।

वर्तमान अध्यक्ष डॉ. एस. वी. प्रभात, एक प्रतिभाशाली शैक्षणिक पार्श्वभूमि (जिसके अन्तर्गत एस. वी. विश्वविद्यालय, आन्ध्रपदेश से राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर और सदर्न क्रास विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया से इंटरनेशनल बिजनेस में में एम. बी. ए. और नागार्जुना विश्वविद्यालय से उद्यमिता विकास में डॉक्टरेट उपाधि शामिल है) और अतिविशिष्ट व्यतिव के धनी है।

वर्तमान मे एन.सी.आर.आई. के अध्यक्ष के रूप में, उनकी प्रमुख चेष्टाओं के अन्तर्गत संगठन के मूल जनादेश को पुनर्परिभाषित करना और गांधीवादी और ग्रामीण उच्चतर शिक्षा/ग्रामीण विकास पर काम कर रहें संस्थानों के पुनरूद्धार के लिए नए रचनात्मक समाधान खोजने पर ध्यान केंद्रित करना रहा है। उन्होंने शांति और संघर्ष –समाधान कार्यक्रमों के लिए नई रणनीति की पहचान की और उसे विकसित किया। सूक्ष्म नियोजन, ग्रामीण विकास में ग्रामीण संसाधनों को किसानों और अन्य हितधारकों के समक्ष आसानी से पहुँचाने के लिए एक सूचना डेटाबेस बनाने के साथ अन्य संस्थानों के साथ संलग्नता (नेटवर्किंग) स्थापित करना है।

सत्य

गांधी जी सत्य और ईश्वर में कोई अंतर नहीं मानते थे। उनके विचार का आधार संभवतः वेदांत (ब्रहमसूत्र) का वह सिद्धांत है, जिसमें कहा गया हैं कि **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।"** गांधी जी के अनुसार यह ईश्वरीय शक्ति है, जो प्रत्येक व्यक्ति में व्याप्त है, वही सत्य है और उसके सत्ता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। यही कारण है कि वे मानते थे कि– ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है। इस प्रकार के सत्यरूपी परमेश्वर की प्राप्ति ही मानव जीवन का परम ध्येय है। उनका मानना था कि संसार से दूर जाकर एकांत में तपस्या करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती बल्कि उसकी प्राप्ति सांसारिक जीवन की महान प्रयोगशाला में निरंतर प्रयोग करते हुये सत्य का अन्वेषण करने से हो सकती है। सत्य हमारे सारें व्रतों का अधिष्ठान है, ध्रुवतारा है। इसको सामने रखकर जीवन की दशा निर्धारित करते हैं।

सत्य क्या है? इसके उत्तर में गांधी जी ने कहा था, यह एक बड़ा कठिन प्रश्न हैं पर स्वयं मैंने अपने लिये इसे हल कर लिया है। तुम्हारी अंतरात्मा जो कहती है वही सत्य है। किंतु सत्य को ग्रहण करके उसे व्यक्त करने के लिये अंतरात्मा शुद्ध होनी चाहिये क्योंकि शुद्ध अंतरात्मा की वाणी ही सत्य हो सकती है। अंतरात्मा कैसे शुद्ध हो सकती है इस विषय पर गांधी जी का मत है कि जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोग के लिये कुछ साधनों एवं उपकरणों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सत्य के प्रयोग के अनुकूल शुद्ध अंतरात्मा के निर्माण के लिये सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह के साधनों की आवश्यकता हैं। इन साधनों पर चलने से अंतरात्मा उत्तरोत्तर शुद्ध होकर सत्य को ग्रहण करने वाली बन जाती है। गांधी जीं यह मानते थे कि देहधारियों के लिये पूर्ण सत्य की प्राप्ति संभव नहीं है क्योंकि देहधारी होते हुये व्यक्ति द्वारा आत्मशुद्धि के नियमों का पूर्ण पालन संभव नही है। फिर भी उनका मत था कि उपरोक्त साधनों द्वारा व्यक्ति उत्तरोत्तर सत्य की ओर बढ़ सकता है। सत्य के दर्शन के सवाल पर गांधी जी ने कहा था, कि मेरी कोशिश हैं कि मैं उसको चरितार्थ करूँ, मैं उसका

साक्षात्कार करूँ। लेकिन यह कहने की मेरी हिम्मत नहीं है कि सत्य का साक्षात्कार मुझे हो गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गांधी जी का सत्य मन, वाणी एवं कर्म की शुद्धता के लिए किए गए कर्मों के परिणामस्वरूप शुद्ध अन्तःकरण में देखा जा सकता है।

सामाजिक सत्य को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं कि सामाजिक जीवन का परम सत्य, ध्रुव सत्य, सारे सामाजिक जीवन का अधिष्ठान क्या है ? मेरी दूसरों के साथ एकता। समाज शब्द 'सम' से बना हैं।'सोसाइटी ' शब्द में जो मूलशब्द हैं, उसका अर्थ हैं – 'सेमनेस' (समानता)। दूसरों के साथ मेरी जो समानता है, उसका अधार है, दूसरों के साथ मेरी एकता। यह तर्क का विषय नही हैं। पुराने शास्त्रकारों ने इसे 'साक्षि–प्रत्यक्ष' कहा हैं। साक्षी–प्रत्यक्ष यानी मुझे अपने अस्तित्व का स्फुरण जैसा है। मैं हूँ यह तर्क का विषय नहीं है, यह अनुमान का विषय नही है, यह सिद्व भी नही किया जा सकता। प्रत्यक्ष ही है कि मैं हूँ। इस तरह से दूसरों के साथ जो मेरी एकता है, जिसका मुझे अनुभव है, वह साक्षी प्रत्यक्ष हैं। इसलिये यह बुद्विवाद से परे है। विज्ञान यहाँ तक नही पहुँच सकता। आईन्स्टाईन ने भी गाँधी के सत्य को कहा था कि 'गाँधी जी ने जिस सत्य और जिस भगवान की उपासना की है, वह वैज्ञानिक है। उसमें मेरी श्रद्धा भी हैं और निष्ठा भी है''।

सामाजिक मूल्य के रूप में जब सत्य की हम उपसना करते हैं, तो ध्रुव सत्य हमारे लिये यह है कि दूसरे व्यक्ति और मैं एक हूँ। दूसरों के साथ मेरी एकता सामाजिकता का आधार हैं, दूसरों के साथ मेरी एकता मेरी नैतिकता का आधार हैं दूसरों के साथ मेरी एकता मेरे सदाचार का आधार हैं। सदाचार का आधार मेरे नैतिकता का आधार मनुष्य की सामाजिकता का आधार दूसरों के साथ पारमार्थिक एकता है। पारमार्थिक से मतलब जो निरपेक्ष हैं, सापेक्ष नही। जिसे सिद्ध नही करना पड़ता। यही सामाजिक दृष्टि से सत्य का अर्थ हैं और इसे ही हम अपने जीवन का ध्रुवतारा समझें।

वनस्पति और पशु से लेकर मनुष्य तक जितना कुछ जीवन हैं, इस जीवन मात्र की एकता जीवन का ध्रुव सत्य हैं। यह समानता पर आधारित है। ग्रामीण समुदाय का निर्माण इसी एकता एवं समानता पर आधारित होनी चाहिए। ग्राम विकास के कार्यकर्ता के व्यवहार से इस समानता की झलक मिलनी चाहिए। उसके जीवन में व्यक्तिगत सत्य एवं सामाजिक सत्य परस्पर पूरक एवं एक दूसरे को सकारात्मक दिशा में ले जाने वाला होना चाहिए।

अहिंसा

गॉधीजी ने कहा था कि "निकला तो सत्य की खोज में लेकिन अहिंसा मिल गयी। एक दरवाजा मिला, वह बन्द था, चाभी अहिंसा थी, और जब तक उस दरवाजे में से नही जाता सत्य का दर्शन मुझे नही हो सकता था।"

सावली के सम्मेलन में गाँधी जी से पूछा गया "आपका मुख्य धर्म सत्य है या अहिंसा है ?"उन्होंने जबाब दिया :– "सत्य की खोज मेरे जीवन की प्रधान प्रवृति रही है। इसमें अहिंसा मिली और नतीजे पर पहुँचा कि इन दोनों मे अभेद है। बगैर अहिंसा के सत्य तक नही पहुॅचा जा सकता। यह मेरे जीवन का अनुभव हैं, मेरी साधना का निचोड़ हैं। इसलिए इन दोंनो की जुगल जोड़ी को मैं अभेद मानता हूॅ। सत्य और अहिंसा मेरे लिए जुगल जोड़ी हैं। यह अर्धनारीश्वर नही हैं। सत्य और अहिंसा एक दूसरे में ऐसे घुले–मिले हैं कि इनको अलग–अलग करना मुश्किल हैं।"

अहिंसा कैसे प्रगट होती है? अहिंसा प्रेम में प्रगट होती हैं। प्रेम का आरम्भ ममत्व से होता और उसकी परिसमाप्ति तादात्म्य में होती हैं। हमारे जीवन में वह तब पैदा होती हैं जब दूसरे का सुख हमारा सुख हो जाता हैं, दूसरे का दुःख हमारा दुःख हो जाता हैं अर्थात् हम संवेदनशीलता एवं सहानुभूति से परिपूर्ण हो जाते हैं।

"सुख देने से सुख होता हैं, दुःख देने से दुःख होता हैं।" अहिंसा आचरण में कैसे प्रगट होगी ? हम सुख ही सुख बोते जायेगे, तो समाज में सुख की फसल होगी।' जो तेरे लिये कॉटा लगाता है, उसके लिये तू फूल लगाता चला जा। जो हमारे साथ बुरा ब्यवहार करे और शत्रुता रखे, उसके साथ भी आप अच्छा ब्यवहार करें और शत्रु को भी गले लगायें।

दो सिद्धान्त मैंने आपके समाने रखे हैं –'एकाकी न रमते' अर्थात अकेले की तबियत नही लगती, 'द्वितीयाद् वै भयं भवति' यानी दूसरे से भय लगता हैं। जिससे डर लगता हैं, उससे प्रेम नही हो सकता और जिससे प्रेम होता, उससे कभी भय नही होता, उसके बारे में कभी अविश्वास नही होता, कभी डर नही

होता। इसलिये अहिंसा हमेशा प्रेम मूलक होती है। 'सर्वत्र भयवर्जन' इसमें आ जाता हैं।इससे निर्भयता का अलग विचार नही करना पड़ता। भावरूप अहिंसा में उसका समावेश हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता हैं कि अहिंसा व्यक्त कैसे होती हैं ?

सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा व्यक्त होती है –सह उत्पादन ओर सहयोगी उत्पादन के रूप में। सह–उत्पादन और सम वितरण। अर्थात हम साथ उपजायेंगे और साथ खायेंगें। यहॉ सह जीवन सह भोज के रूप में व्यक्त होता हैं। सहभोज का अर्थ केवल भोजन करना नही हैं। इसमें सहयोग आ गया, इसमें सामुदायिक उत्पादन आ गया। आप कितने कदम इस दिशा में रखेगें, वह आपकी सामर्थ्य की बात है।

जब अहिंसा को हम अपने जीवन का सिद्धान्त मान लेते हैं, तो वह हमारे सारे जीवन मे व्याप्त हो जानी चाहिए। हमारा विश्वास हो कि मानव जाति ने अहिंसा की दिशा में बराबर प्रगति की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे उस तरफ और ज्यादा बढ़ना हैं। इस संसार में स्थिर कुछ भी नही है, सब कुछ गतिशील हैं इसलिये प्रेम को सदा आगे बढ़ाना होगा। यदि इसे आगे नही बढ़ायेंगे, तो अनिवार्य रूप से हम पीछे जायेंगे, क्योंकि यहीं प्राकृतिक नियम हैं।

गांधी जी के अनुसार मनुष्य स्वभावतः अहिंसा–प्रिय है और वह हिंसक केवल परिस्थितिवश ही होता है। उनका मत था कि मानव समाज का इतिहास उसकी आध्यात्मिकता के विकास का इतिहास है, क्योंकि उसके विकास का इतिहास यह बताता है कि वह निरंतर अहिंसा की ओर अग्रसर होता रहा है। मानव समाज के इतिहास के आदिम काल के मनुष्य नरभक्षी थे, परंतु इस प्रकार का नरभक्षण आदिकालीन मनुष्य उदर–पूर्ति के लिये करता था। बाद में ऐसा समय आया कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के खाने का अनौचित्य मनुष्य की समझ में आ गया और वह पशुओं का शिकार करके अपनी उदरपूर्ति करने लगा। लेकिन मनुष्य निरंतर घूमने वाले शिकारी जीवन से भी उकता गया और उसने खेती व पशुपालन द्वारा जीवन निर्वाह करना अधिक अच्छा समझा। परिणामतः मनुष्य एक स्थान पर स्थायी रूप से बस गया। इसके कारण सामाजिक जीवन, गाँव, नगर, राष्ट्र अस्तित्व में आये और सभ्यता व समाज का विकास हुआ। गांधी जी का विचार था कि इस प्रकार समस्त मानव इतिहास में हम यह देखते हैं कि मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति का ह्रास व उसकी अहिंसक वृत्ति का विकास हो रहा है। यही कारण है कि मानव जाति बढ़ती ही गई अन्यथा यदि मनुष्य स्वभावतः हिंसक होता और उसकी हिंसक वृत्ति बढ़ती ही रहती, तो मानव जाति नष्ट हो गई होती। इसमें संदेह नहीं कि संसार में हिंसा को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता। वह संसार में विद्यमान है और कभी–कभी अपना रौद्र रूप दिखा भी जाती है। परंतु ऐसा होते हुये भी मानव समाज के विकास का इतिहास यही

बताता है कि मूल रूप से मनुष्य अहिंसाप्रिय है और यह स्वाभाविक है कि उत्तरोत्तर वह अहिंसा की ओर ही बढ़ रहा है। इस प्रकार अहिंसा को मानव जगत का सर्वोच्च नियम मानते हुये गांधी जी की का मत था कि उसी पर चल कर मानव समाज की भावी उन्नति सम्भव हो सकती है। उनका मत था कि अहिंसा के नियम पर ही चलकर सुव्यवस्थित समाज एवं सफल मानव जीवन संभव हो सकता है।

गांधी जी के मतानुसार अहिंसा का अर्थ केवल हत्या न करना ही नहीं है, वरन् अहिंसा से उनका तात्पर्य अन्य किसी भी प्रकार से विरोधी को कष्ट न पहुंचाना है। वे अहिंसा के समर्थक थे, और यह मानते थे कि अहिंसा पर आधारित मानव समाज ही आदर्श समाज हो सकता है। परंतु फिर भी वे यह मानते थे कि जीवधारियों का जगत पूर्ण अहिंसा पर नहीं चल सकता। वे यह जानते थे कि स्वयं अपने शरीर के भरण पोषण के लिये, अपने आश्रितों की रक्षा के लिये अथवा जिसके साथ हिंसा की जाती है, उसी के हित साधन या उसी के दुःख निवृत्ति के लिये हिंसा करनी पड़ती है। परंतु इस कारण वे यह कदापि स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे कि जहां बिना हिंसा के काम चल सकता है, वहां भी हिंसा का प्रयोग निःसंकोच किया जाये। इस संबंध में उनका कहना था कि–" जीवन के लिये कुछ न कुछ हिंसा आवश्यक है, पर हमें कम से कम हिंसा का मार्ग **अपनाना चाहिये।**"

इस प्रकार शरीर के भरण पोषण के लिये जितनी हिंसा अनिवार्य है, उतनी हिंसा गांधी जी के अनुसार मान्य है। उदाहराणार्थ, हमें अपना भोजन प्राप्त करने के लिये वनस्पतियों अथवा अन्य जीवों की हिंसा करनी पड़ती है। इसी प्रकार स्वास्थ्य व जीवन रक्षा के लिय अनेक जीव जंतुओं व मनुष्यों तक की हत्या करनी पड़ती है। गांधी जी के मतानुसार इस प्रकार की हिंसा मान्य व अनिन्दनीय है। किसी पशु अथवा अन्य जीव को स्वयं उसी के कष्ट निवारण के लिये समाप्त कर देना तो उनके मतानुसार हिंसा भी नहीं है। परंतु मनुष्य के विषय में वे इसको लागू करना उचित नहीं समझते थे, क्योंकि औषधि आदि से उसका उपचार होकर उसके चोटों या कष्टों का निवारण होने की सदा सम्भावना बनी रहती है। प्रायः इसी आधार पर वे मानव समाज पर अत्याचार करने वालों अथवा अन्य प्रकार के विरोधियों को बलपूर्वक समाप्त कर देने को भी वे विहित नहीं समझते थे, क्योंकि उनका मत था कि बुरे से भी बुरे मनुष्य का भी सुधार होने की संभावना होती है। इस प्रकार गांधी जी के अनुसार विरोध व विरोधी को पशु बल से दबा देना हिंसा है।

परंतु इससे यह तात्पर्य नहीं है कि व्यक्ति को अहिंसावादी होने के नाते अन्याय व अनावश्यक विरोध तथा अत्याचार को उदासीन होकर सहन करते रहना चाहिये। इस प्रकार की उदासीनता को तो वे कायरता कहते थे तथा कायरता व

हिंसा में से वे हिंसा को अच्छा समझते थे। उनका कहना था कि **"जब कायरता व हिंसा में से एक पर चलना हो तो मैं हिंसा पर चलना अच्छा समझता हूं। मैं बिना किसी को मारे हुये शांतिपूर्वक मर जाने का साहस उत्पन्न करना चाहता हूं पर जिस किसी में यह साहस नहीं हैं, उसके लिये मैं यह अच्छा समझता हूं कि लज्जापूर्वक खतरे से दूर भागने के बजाय वह मारे और मरे।"**

वस्तुतः नकारात्मक रूप से गांधी जी के अनुसार जहां अपने प्रतिद्वंदी के प्रति अपना स्वार्थ, क्रोध तथा द्वेष समाप्त कर देना अहिंसा है, वहां सकारात्मक रूप में अहिंसा का अर्थ अन्याय या अत्याचार आदि के प्रति उदासीन बने रहना नहीं वरन् उनका सक्रिय किंतु शांतिपूर्ण विरोध करना है। अहिंसावादी अपने प्रतिद्वंदी से उसी प्रकार का प्रेम रखता है, जिस प्रकार अनुचित कार्य करने वाले पुत्र का पिता यह प्रयत्न करते हुये भी कि पुत्र अनुचित कार्य करना छोड़ दे, उससे स्नेह बनाये रखता है। वह अपने प्रतिद्वंदी की अच्छाई को स्वीकार करने व उसके अपराध को क्षमा करने के लिये सदा तैयार रहता है। वह बुराई से घृणा करता है, बुराई करने वाले से नहीं। वह स्वयं सहर्ष कष्ट सहन कर लेता है, पर अपने प्रतिद्वंदी को कष्ट नहीं देता है। इस प्रकार अहिंसा का मूल आधार प्रेम है, और शांतिपूर्ण विरोध करते हुये इसी के द्वारा अहिंसावादी अपने प्रतिद्वंदी का हृदय परिवर्तित करने की आशा करता है।

अहिंसापूर्ण विरोध द्वारा विरोधी के हृदय परिवर्तन में विश्वास करने वाले व्यक्ति को धैर्यवान भी होना चाहिये। अहिंसा के मार्ग से वांछित उद्देश्य की प्राप्ति प्रायः शीघ्र नहीं होती है। अतः सच्चे अहिंसावादी को धैर्यवान भी होना आवश्यक है। उसे यह जानना चाहिये कि अहिंसा कभी विफल नहीं होती, चाहे समय कितना भी लग जाये और इसीलिये उसे धैर्यपूर्वक अहिंसा पर चलते चले जाना चाहिये। धैर्य टूटने पर विरोधी का विरोध प्रायः हिंसापूर्ण हो जाता है। अतः अहिंसा का दूसरा मूल आधार धैर्य है, और उसके बिना अहिंसा के मार्ग पर चलना कठिन है।

सर्वोदय

यों तो भारतीय दर्शन का आधार ही सबका कल्याण है तथा **"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्रानि पश्यन्तु, मा कश्चित दुखभाग भवेत।"** जैसे मूलमंत्र सदा संसार को इस बात का ध्यान दिलाते रहते हैं कि संसार का कल्याण किसी भी वर्ग विशेष तथा देश विशेष के कल्याण में नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण में है, परंतु अपने आधुनिक रूप में सर्वोदय का विचार उसके प्रवर्तक महात्मा गांधी के हृदय में रस्किन की पुस्तक "अन्टु दिस लास्ट" के पढ़ने से आया। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "जिस पुस्तक ने मेरे जीवन में तत्काल महत्वपूर्ण परिवर्तन कराया, वह तो रस्किन की "अन्टु दिस लास्ट" ही थी। उसे हाथ में लेने के बाद मैं छोड़ न सका। उसने मुझे पकड़ लिया। ट्रेन में उसे मैंने पढ़ डाला। घर पहुंचने पर मुझे सारी रात नींद नहीं आई। पुस्तक में बताए विचार तुरंत अमल में लाने का मैंने इरादा बना लिया।" जान रस्किन की उक्त पुस्तक को पढ़ने से जो प्रेरणा गांधीजी को मिली, उसी से सर्वोदय का विचार गांधी जी के मश्तिष्क में आया।

रस्किन ने अन्टु दिस लास्ट नामक पुस्तक का नाम बाइबिल की एक कहानी के आधार पर रखा है। संक्षेप में वह कहानी इस प्रकार है कि, किसी आदमी को अपना एक काम कराना था। दोपहर को जब उसने देखा कि एक मजदूर से शाम तक काम पूरा नहीं होगा तो उसने एक और मजदूर को लाकर काम पर लगा दिया। तीसरे पहर उसे दिखाई दिया कि शाम तक उन दो मजदूरों से भी काम पूरा नहीं होगा। अतः एक और मजदूर को लाकर उसने काम पर लगा दिया। काम समाप्त होते ही उन तीनों मजदूरों को उसने काम के घण्टों के हिसाब से अलग–अलग मजदूरी नहीं दी, वरन् तीनों को एक सी मजदूरी दी, क्योंकि उसके विचार से पूरे दिन काम न करने वाले दोनों मजदूरों को भी पूरे दिन की मजदूरी मिलना ही न्याय था, क्योंकि वे सबेरे से ही कार्य करने के लिये तैयार थे और उसके काम के पूरे होने में तीनों के श्रम का महत्व एकसा था। अंत में आने वाले को भी पूरी मजदूरी मिलनी चाहिये, तभी सब के साथ न्याय हुआ माना जा सकता है। यही बाइबिल की उक्त कहानी का सार है।

बाइबिल की कहानी के आधार पर रस्किन ने अपनी पुस्तक "अन्टु दिस लास्ट" लिखी और उससे प्रेरणा पाकर गांधीजी के हृदय में यह विचार आया कि मनुष्य जाति का कल्याण तभी हो सकता है, जब विश्व के अंतिम व्यक्ति तक का कल्याण अर्थात् सर्वोदय हो। गांधी जी ने अपनी जिस लेख माला को सर्वोदय का नाम दिया है, उसके प्रस्तावना में जो कुछ लिखा है, उसमें उन्होंने स्वयं बताया है कि वह रस्किन की "अन्टु दिस लास्ट" पुस्तक का ही सार है तथा चूंकि रस्किन की पुस्तक का उद्देश्य अधिकांश अथवा कुछ का उदय न होकर, सबका उदय है, उन्होंने अपनी लेखमाला का नाम भी "सर्वोदय" रखा है।

सर्वोदय की व्याख्या

जैसा सर्वोदय के शाब्दिक अर्थ से ही प्रकट हो रहा है कि, इस विचारधारा का आधार सबका उदय है। इस विचारधारा का जो नाम गांधीजी ने दिया है, उसका बड़ा महत्व है, क्योंकि इसके द्वारा समाजवाद के एक ऐसे रूप का प्रतिपादन किया गया है, जो उसके अन्य रूपों से भिन्न व उच्चकोटि का है। समाजवाद के विविध रूप संपूर्ण समाज के हित की बात तो कहते हैं, पर वस्तुतः वर्गहित को ही संपूर्ण समाज का हित मान लेते हैं। समाजवादी समाज की स्थापना के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे सभी यह प्रतिपादित करते हैं कि समाज से उस वर्ग की समाप्ति होनी चाहिये जिसे संपन्न कहते है। इनमें से कुछ तो उसे हिंसापूर्ण क्रांति के द्वारा समाप्त करने की बात कहते हैं। उदाहराणार्थ यदि साम्यवाद का प्रतिपादन यह है कि सच्चा समाजवाद तभी स्थापित हो सकता है, जब समाज के सम्पन्न वर्ग को हिंसापूर्ण क्रांति द्वारा समाप्त कर दिया जाये, तो राज्य समाजवाद के उद्देश्य की प्राप्ति लोकतंत्रात्मक ढंग से राजकीय व्यवस्थापन द्वारा समाज से संपन्न वर्ग समाप्त करके करना चाहता है। परंतु सर्वोदयी समाजवाद इन दोनों ही प्रकार के समाजवादों से भिन्न व उच्चकोटि का है। उसके ध्येय में किसी एक वर्ग का उदय करना नहीं वरन् सबका उदय करना है। उसके ध्येय में उनका भी उदय सम्मिलित है, जिन्हें समाजवाद के अन्य रूप संपन्न वर्ग का मानकर समाप्त करने की बात कहते हैं। इस संबंध में विनोबा जी ने कहा है कि सर्वोदय "कुछ लोगों का अथवा बहुत लोगों का या अधिकांश लोगों का ही उदय नहीं चाहता। हम उंचे–नींचे, सबल–दुर्बल, विद्वान व मूर्ख सभी के हित से ही संतुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय शब्द से इस उच्च तथा सर्वव्यापी भावना का बोध होता है।"

इस संबंध में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार उन लोगों के उदय से क्या तात्पर्य है, जो समाज की वर्तमान दशा से पहले से ही संपन्न है। संसार में जब निर्धन, सशक्त तथा शोषित लोगों के उदय की बात कही जाती है, तो वह ठीक प्रतीत होता है, परंतु सर्वोदयी विचारधारा के प्रतिपादक जब उन लोगों के भी उदय की बात कहते हैं, जिन्हें आजकल संपन्न

कहा जाता है, तो यह कुछ अजीब सा मालूम होता है। सर्वोदयी विचारधारा की मान्यता है कि इस दुखी संसार में प्रत्येक व्यक्ति को उठाया जाना आवश्यक है। विनोबा जी के शब्दों में सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार धनी लोग कभी उठे ही नहीं है। परिणाम यह है कि दोनों को ही उठाना है।'' सर्वोदय के अनुनायियों के अनुसार जो धनिक हैं, नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से गिरे हुये हैं, क्योंकि उनका यह रूप दूसरों के शोषण पर आधारित है। अतः यदि स्वेच्छा से ये अपनी आवश्यकता से अधिक संपत्ति का त्याग कर सकें, तो उनका नैतिक उत्थान होगा। दूसरी ओर जो निर्धन व शोषित लोग हैं, उनके लिये रोटी कपड़े की समस्या की पूर्ति ही नैतिकता, आध्यात्मिकता आदि सब कुछ है। अतः यदि उनकी इस समस्या का समाधान हो सके तो, उन्हें भी नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से उपर उठने का अवसर प्राप्त होगा। यही कारण है कि सर्वोदय निर्धन व धनी सभी के उदय की बात कहता है। सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार निर्धनों का उदय भौतिक व धनिकों का उदय नैतिक होना है। इस तरह से यह विचारधारा इस मामले में अन्य सभी विचारधाराओं से भिन्न है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वोदयी विचारधारा का आधार एक वर्ग का उदय न होकर सभी का उदय है। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि सर्वोदय का विचार एक क्षेत्रीय अथवा एकदेशीय नहीं हो सकता है। सबका उदय किसी एक देश अथवा कुछ देशों में हो जाये, इससे भी सर्वोदय का आदर्श पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता। उसका आदर्श केवल तभी पूरा हुआ माना जा सकता है, जब सारे विश्व में सबका उदय हो। अतः सर्वोदय की किसी भी व्याख्या में जहां इस बात पर बल दिया जाना आवश्यक है कि उसका आधार किसी वर्ग विशेष का उत्थान करना न होकर सभी का उत्थान करना है, वहां उसमें इस बात पर भी बल देना आवश्यक है कि सबका उत्थान किसी एक देश में न होकर सारे संसार में होता है।

काका कालेकर ने गांधीजी द्वारा लिखित सर्वोदय के अनुवाद के आमुख में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने लिखा कि ''रस्किन ने जो कुछ भी लिखा, सारी दुनिया के लिये लिखा, लेकिन गांधीजी ही उसके अनुसार चल सकें। उन्होंने रस्किन से प्रेरणा पाकर ''सर्वोदय'' में जो कुछ लिखा सारी दुनिया के लिये लिखा। गांधीजीका विश्वास था कि बाकी देश उसके अनुसार चले या न चलें, हिन्दुस्तान तो चलेगा ही। और अगर एक भी राष्ट्र नीति की राह पर चलेगा तो उसका असर सारी मानव जाति पर अवश्य होगा।'' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सर्वोदयी विचारधारा विश्वव्यापी सर्वोदय का प्रतिपादन करती है। इस तरह से सर्वोदयी विचारधारा का दार्शनिक पक्ष अत्यंत सशक्त है।

सर्वोदय के आधार

सर्वोदय क्या है, इसके विषय में जानने के पश्चात यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सबके उदय का यह आदर्श किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। अन्य समाजवादी विचारधाराओं ने भी अपने–अपने ढंग से यह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि सबका कल्याण कैसे हो सकता है। परंतु उन सबके द्वारा प्रतिपादित ढंगों की विशेष बात यह है कि उनमें उद्देश्य की प्राप्ति व्यक्ति की आंतरिक प्रेरणा के फलस्वरूप नहीं बाहरी दबाव के फलस्वरूप ही करने की बात कही गई। उदाहराणार्थ, साम्यवाद का सबके कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति का ढंग यह है कि समाज से संपन्न वर्ग को हिंसात्मक क्रांति द्वारा समाप्त कर दिया जाये तथा फिर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र बलपूर्वक साम्यवादी समाज की स्थापना करके सबका कल्याण करे। राज्य समाजवादी विचारधारा का सबके कल्याण का ढंग यह है कि हिंसा का प्रयोग न किया जाये, परंतु राजकीय व्यवस्थापन द्वारा संपन्न वर्ग की संपन्नता को तथा विपन्न वर्ग की विपन्नता को समाप्त करके सबके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जाये। परंतु इन दोनों ही मार्गों में सबके कल्याण की प्राप्ति व्यक्ति की अंतःप्रेरणा से न होकर, बाहरी दबाव से होती है। सर्वोदयी विचारधारा का प्रतिपादन ऐसा नहीं है, उसके अनुसार किसी बाहरी दबाव के कारण व्यक्ति को सर्वोदय के लिये प्रयत्नशील नहीं होना चाहिये वरन् ऐसा उसे अपनी अंतः प्रेरणा से स्वतः ही करना है। व्यक्ति को स्वतः ही कुछ आधारों पर चलकर सर्वोदय के उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है।

सर्वोदय के उद्देश्य

1. **इन्द्रिय निग्रह–** जैसे विनोबा जी ने कहा है, सर्वोदय का पहला आधार इन्द्रिय निग्रह है। व्यक्ति का व्यक्तित्व ऐसी वस्तु है,, जिससे व्यक्ति का संबंध जन्म से ही होता है। सर्वोदयी विचाारधारा की मान्यता है कि यदि सभी व्यक्ति स्वयं ही अपनी इंद्रियों पर संयम रखें तो, सबका कल्याण स्वतः ही होगा, क्योंकि समाज में अनेक दोष ऐसे होते हैं जो केवल इसलिये विद्यमान हैं कि लोग संयमी नहीं हैं। संयम की बात को लोग प्रायः केवल सिद्धांत की बात बताते है। परंतु विनोबा जी के अनुसार यह कोई असंभव बात नहीं हैं। उन्होंने इस संबंध में कहा है कि "बुरी आदतों के कारण संयम रखना मुश्किल होता है नहीं तो यह मामूली बात है। जो कछुआ जानता है, उसे मनुष्य क्यों नहीं जानेगा? जहां खतरा है, वहां इन्द्रियों को समेट लेना और जहां नहीं है वहा उन्हें खुला छोड़ देना कछुआ जानता है। मनुष्य के लिये कोई कठिन बात नहीं है कि जितनी भूख है उतना खाना, प्यास लगने पर पानी पीना, लेकिन न तो ज्यादा खाना और न ज्यादा निद्रा लेना।....क्या यह कठिन बातें हैं, जिनके लिये हमें अभ्यास करना पड़े? परंतु गलत तालीम दी जाती है, इसलिये यह भारी तपस्या मालूम होती है। .....सर्वोदय विचार में यह तत्व मुख्य है कि अपने मन को वश में रखना चाहिये, इन्द्रियों को काबू में रखना चाहिये।

2. **नये समाज का निर्माण**– सर्वोदय का दूसरा आधार नये समाज का निर्माण करना है। जैसा कि विनोबा जी ने कहा है कि वस्तुतः जिससे व्यक्ति जन्म से ही संबंधित है, समाज है। अतः सब व्यक्तियों का कल्याण हो सकें, इसके लिये यह आवश्यक है कि समाज का नव निर्माण सर्वोदयी दृष्टिकोण से हो। सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार वर्तमान समाज व्यवस्था व वर्तमान समाजशास्त्र कृत्रिम है। उसके मतानुसार वर्तमान समाजशास्त्र का यह प्रतिपादन कि समाज के विविध व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों के हित परस्पर विरोधी होते है, स्वाभाविकता के प्रतिकूल है। उसके इस अवास्तविक प्रतिपादन के कारण ही समाज में अनेक ऐसे दोष फैले हुयें हैं जिनके कारण सब का उदय नहीं हो सकता है।

सर्वोदयी विचारधारा के अनुनायियों का मत है कि वर्तमान समाजशास्त्र की हितों के परस्पर विरोध संबंधी मान्यता के कारण ही परस्पर विरोधी अनेक संघ बने हुये हैं। विनोबा जी के मतानुसार इस परस्पर विरोधी संघों की इतनी अधिकता है कि जीवन के किसी क्षेत्र में इनका अस्तित्व नहीं हैं। उन्होंने इस संबंध में कहा है कि "अब एक ही कमी है और वह है अखिल भारतीय बाप संघ और अखिल भारतीय बेटा संघ।" इस पारस्परिक कृत्रिम विरोध में सामंजस्य स्थापित हो सके, इसके लिये बहुमत पर आधारित राजनीति को अपनाने से सर्वत्र चुनाव का विष वृक्ष खड़ा हो गया है। विनोबा जी के द्वारा इस विषय में बड़े ही व्यंग्यपूर्ण ढंग से कहा गया है कि "यह जो चुनाव होता है, उसका अपना अलग धर्म विचार है। उसके तीन सिद्धांत हैं: आत्मस्तुति, परनिंदा और मिथ्याभाषण।

सर्वोदयी विचारधारा की यह मान्यता है कि सर्वोदय के उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें एक नया समाजशास्त्र बनाना होगा। इसका प्रतिपादन यह हो कि एक के सच्चे हित के विरूद्ध दूसरे का सच्चा हित नहीं हो सकता है। इसी मान्यता के अनुसार हमें एक ऐसे नये समाज की रचना करनी होगी जिसमें पारस्परिक विरोध न होकर परस्पर पूरकता का प्रवाह होगा। समाज के लोगों की जैसी शिक्षा दीक्षा होती है, वैसा ही समाज बनता हैं। अतः नये दृष्टिकोण भी बदलना होगा। विनोबा जी ने वर्तमान समाज व्यवस्था के इस दोष की ओर समाज का ध्यान बड़े सुंदर शब्दों में आकर्षित करते हुये कहा है कि " इस दोष को समाप्त करने के लिये हमे नये सिरे से सर्वोदयी समाज की रचना करनी होगी। उन्होंने कहा है कि 'यह जो अल्पसंख्या और बहुसंख्या का विचार चला है, उसका बहुत भयंकर परिणाम हो रहा है। इसमें करोड़ों रूपया खर्च हो रहा है। इसमें गरीबों का कोई स्थान नहीं है। जातिभेद तो अब इतना बढ़ गया है कि कम्युनिस्टों में जो चीज नहीं थी, वह उनमें भी आ गई है। कितनी भयानक बात है कि जिस जातिभेद पर राजाराम मोहन राय से लेकर गांधीजी तक सतत् प्रहार

होता रहा और जो मरने की तैयारी में था, वही इस चुनाव के कारण, अल्पसंख्या और बहुसंख्या के कारण बढ़ रहा है। इसे डेमोक्रेसी अर्थात लोकतंत्र का वरदान समझिये। इस वास्ते हमें एक नये सिरे से रचना करनी होगी, नया समाजशास्त्र बनाना होगा। जैसा शिक्षण शास्त्र होता है, वैसा समाजशास्त्र होता है। इसलिये शिक्षणशास्त्र में भी परिवर्तन करना होगा।

3. **व्यक्ति एवं सृष्टि का संबंध**–सर्वोदय का तीसरा आधार यह है कि सबका संबंध सृष्टि के साथ आवश्यक रूप से होना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति के शरीर का पोषण सृष्टि में से ही होता है। इस पर विनोबाजी ने बड़ा विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। विनोबा जी का मत इस संबंध में यह है कि सृष्टि उसी प्रकार सब का पोषण करती है जिस प्रकार माता अपनी संतान का पोषण करती है, परंतु यदि हमारे सामने यह समस्या आती है कि भूमि जनसंख्या का पूरा भार संभालने में असमर्थ है, तो इसका कारण उनके अनुसार यह नहीं है कि यह उसकी असमर्थता है, वरन् इसका कारण यह है कि सब व्यक्ति सृष्टि की सेवा, उसी प्रकार नहीं करते जिस प्रकार सब संतान अपनी माता की सेवा करते हैं। यदि सभी सृष्टि की सेवा करें अर्थात् सभी अपनी पूरी शक्ति से कार्य करें, तो जनसंख्या की कभी कोई समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती है। विनोबा जी के शब्दों में सर्वोदय का सिद्धांत यह है कि– "सृष्टि में जो प्राणी और जन्तु हैं, उनके पोषण का इंतजाम सृष्टि में ही है। लेकिन सृष्टि की सेवा के लिये हमें भगवान ने जो हाथ दिये हैं, उनका हमें पूरा उपयोग करना है।"

   सृष्टि की सेवा के विषय में सर्वोदयी विचारधारा के विश्लेषण को यदि सीधे–सादे शब्दों में कहा जाय तो इसका प्रतिपादन यह है कि सभी कुछ न कुछ समय के लिये खेती का कार्य अवश्य करें, जिससे समाज को भोजन की कमी व जनसंख्या की समस्या का सामना न करना पड़े। विनोबा जी ने इस संबध में यहां तक कहा है कि "हमारा प्रधानमंत्री भी चार घंटे खेती करेगा और फिर चार घंटे दूसरा कार्य करेगा।" सर्वोदयी विचारधारा की मान्यता इस प्रकार है कि यदि इस प्रकार व्यक्ति व सृष्टि का संबंध रहेगा तो न भोजन की कमी रहेगी और न हमें कृत्रिम परिवार नियोजन का सहारा लेना पड़ेगा।

   फिर भी सृष्टि के साथ संबंध बनाये रखने के नाम पर सर्वोदयी विचारधारा की मान्यता यह नहीं है कि हम रूढ़िवादी हो जायें और आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति की ओर आंखे बंद करके कूप–मण्डूक बने रहेंगे। विनोबाजी ने स्वयं उन अनेक बातों के विषय में अपने जो बहुमूल्य विचार व्यक्त किये हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि सर्वोदयी विचारधारा आधुनिकता के प्रति

विमुख नहीं है, उसका प्रयोग सबका उदय करने के लिये प्रेरित करती है। विनोबा जी ने विज्ञान के संबंध में कहा है कि "हम चाहते हैं कि विज्ञान खूब बढ़े। लेकिन हम यह भी चाहते हैं कि उसका ठीक ढंग से उपयोग करने की बुद्धि हममें हो। अग्नि का उपयोग हम जरूर कर सकते हैं लेकिन अग्नि का उपयोग रसोई बनाने में किया जाय, किसी के मकान में आग लगाने के लिये न किया जाय।.....विज्ञान की शादी अगर हिंसा के साथ होगी तो मानव का सर्वनाश होगा। इसलिये विज्ञान के साथ अहिंसा का ही विवाह होना चाहिये। अहिंसा और विज्ञान के संयोग से पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा।"

बिजली के उपयोग के विषय में कहा है कि "अगर आप उसके साधन सबको देते हैं, उसका उपयोग सार्वजनिक होता है तो उसका लाभ सबको मिलता है। इतना करने के लिये आप राजी हैं तो बिजली का उपयोग करने के लिये बाबा भी राजी है।" मशीनों आदि के प्रयोग के विषय में भी विनोबा जी के विचार अनुकरणीय हैं। उन्होंने कहा हैं कि "उपकरण का महत्व कारणों से ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहिये। पांव से साइकिल का महत्व और आंखों से चश्में का महत्व बढ़ा तो कैसे चलेगा? .....हम यंत्र से डरते नहीं। हम तो यही चाहते हैं कि यंत्र हमारे हाथ में रहे, हम यंत्र के हाथ में नहीं।" उत्पादन कार्य श्रम विभाजन की पद्धति से हो इसे विनोबा जी अच्छा नहीं समझते हैं। उनका विचार है कि इनसे जीवन नीरस बनता है। उनका मत है कि व्यक्ति को एक धंधी न होकर बहुधंधी होना चाहिये, और खेती करने का धंधा किसी न किसी रूप में प्रायः सभी का होना चाहिये।

केवल बड़े–बड़े भवनों या बड़े–बड़े कार्यालय या बड़े–बड़े कारखानों तक ही अपनी दिनचर्या को सीमित रखने के स्थान पर यदि व्यक्ति अपना संबंध प्रकृति से भी रखेगा तो विनोबा जी का मत है कि उसे आरोग्य लाभ भी मिलेगा। उन्होंने इस संबंध में बड़े सीधे शब्दों में बड़े उपयोग की बात कहते हुये कहा है कि 'मनुष्य को सबसे ज्यादा जरूरत हवा और आकाश की है।... आकाश खूब खाना चाहिये, उसका अजीर्ण नहीं होता। दूसरी जरूरत हवा की है। हवा का खूब सेवन करना चाहिये, उससे पोषण मिलता है। नंबर तीन सूर्य प्रकाश की जरूरत है, नंबर चार में पानी की जरूरत है। मनुष्य को कम से कम जरूरत अन्न की है। इसलिये कम खाना चाहिये और दूसरे जो सूक्ष्मभूत हैं, उनका ज्यादा सेवन करना चाहिये। इस तरह से सृष्टि से संबंध रख कर यह क्रम ध्यान में लिया जायेगा तो मनुष्य का आरोग्य उत्तम रहेगा। इस प्रकार जैसा हमने देखा, सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार सबके उदय का एक आवश्यक आधार यह भी है कि मनुष्य प्रकृति के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाकर अपने को

उससे दूर करने की चेष्टा को छोड़कर उससे घनिष्ठ संबंध बनाये रखने की ओर प्रयत्नशील हो।

4. **राज्य का क्षय**– सर्वोदय का चौथा आधार सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार राज्य व सरकार का क्षय है। जैसा कि विनोबा जी ने कहा है कि "सरकार कोई नैसर्गिक वस्तु नहीं है, बनावटी चीज है। लेकिन आज हालत यह हो रही है कि जहां मनुष्य का जन्म हुआ है वहां उस पर सरकार का अंकुश आ जाता है। सरकार की शक्ति इतनी व्यापक हो गई है कि जीवन के सभी अंगों से उसका स्पर्श होता है।" विनोबा जी ने अपने इस कथन में जो कुछ कहा है, वह राज्य के लिये ही कहा है। अतः यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि सर्वोदयी विचारधारा राज्य को एक कृत्रिम संस्था मानती है। फलतः उसका यह प्रतिपादन है कि राज्य व उसकी सर्वव्यापकता का ह्रास होना चाहिये। उसके अनुसार राज्य बुद्धि स्वातंत्रय को योजनाबद्ध ढंग से नष्ट करता है। विनोबा जी ने इस तथ्य को बड़े सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। उन्होंने कहा है कि जनता की बुद्धि का नियंत्रण सरकार करती है.....शिक्षा विभाग का अधिकारी आज जो किताब तय करता है, उसका अध्ययन सारे विद्यार्थियों को करना पड़ता है और उसी की परीक्षा भी देनी पड़ती है। अगर फासिस्ट हो, तो फासिस्ट विचारों की किताबें विद्यार्थियों को मिलेगी। कम्यूनिस्टों की सरकार होगी तो उनके विचारों का अध्ययन विद्यार्थियों को करना होगा। जैसी सरकार होगी, वैसी विद्या विद्यार्थियों को दी जायेगी विचार स्वातंत्रय का ज्यादा से ज्यादा अधिकार जिनकों है, उनके दिमागों में बने बनाये विचार ठूंसे जायेंगे।

राज्य इस प्रकार बने बनाये विचारों से लोगों के दिमागों को भरता रहे, यह सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार सर्वोदय के मार्ग में बाधक है। सर्वोदयी विचारधारा के समर्थकों के अनुसार व्यक्ति को ऐसी राज्य संस्था से मुक्ति मिलनी चाहिये। विनोबा जी ने इस संबंध में स्पष्ट कहा है कि "जहां तक व्यक्तियों का संबंध है, हर एक को मन तथा इंद्रियों पर काबू रखने का ज्ञान होना चाहिये। समाज में एक दूसरे के हितों के साथ एक दूसरे के हितों का विरोध नहीं है, यह समझकर समाज रचना करनी होगी। सरकार को बिल्कुल जरूरत नहीं हैं, यह समझ कर उसके क्षय का आरंभ आज से ही करना होगा।"

सर्वोदय के आधारों के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वोदयी विचारधारा इन्द्रिय संयम, पारस्परिक हितों के सामंजस्य पर आधारित नये समाज की रचना प्रकृति के प्रति नये दृष्टिकोण के निर्माण तथा राज्य के क्षय को सर्वोदय का आधार मानती है।

सर्वेअपि सुखिनःसन्तु

गॉधी जी ने कहा था कि मैं चाहता हूँ कि पूरे सौ प्रतिशत यानि सभी लोगों का जीवन सम्पन्न हो। सर्वोदय यह कहता है कि सबकी भलाई हो। इसलिये सर्वोदय एक दर्शन या वृत्ति ही नही यह व्यवहार की नीति भी हैं। यह दर्शन है, मनोवृत्ति है और व्यवहार की नीति भी है। मनुष्य के आदर्श के संकल्प में सबका समावेश होना चाहिये। संकल्प ये होना चाहिये की कल्याण में एक भी प्राणी छूटने न पाये। क्योंकि मनुष्य का आदर्श उसकी पहुच में होता है, उसकी पकड़ में नहीं। इसी में सबकी प्रगति के लिये अवसर है। हमारा आदर्श इतना ऊचॉ हो कि उसका सारा जीवन प्रगति मय हो।

इसलिये सर्वोदय का संकल्प अल्प नही, महान हैं, केवल महान नही, समग्र है। यदि हम चाहॅते हैं कि हमारा सर्वोदय अर्थात सच्चे लोकतन्त्र का सपना सच्चा साबित हो तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भरत का उतना ही सशक्त नागरिक समझे जितना देश के बड़े से बड़े आदमी को, और अपने दिल में जात–पात, सवर्ण –अवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखें। हर एक को बराबर समझे और प्रेम के रेशमी जाल में बॉधे कोई किसी को अछूत न माने और एक मजदूर व पूंजीपति को समान समझें। मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई फर्क न हो। मादक पदार्थ का सेवन न करें और प्रत्येक पुरूष स्वदेशी का पालन जीवन वृत के रूप मे करे। महिलाओं का सम्मान करें जब जरूरत पड़े तो हमें दूसरे की सेवा में अपने प्राण देने के लिये तैयार तैयार रहना चाहिये न कि दूसरे के प्राण लेने के लिये हम तत्पर रहें।

सर्वोदय का तत्वज्ञान कुल मिलाकर समन्वयात्मक हैं यानि सारे विचारों को एकत्र लाने की शक्ति सर्वोदय विचार में है। हिन्दुस्तान की संस्कृति ही ऐसी है कि समन्वय उसके रोम–रोम में बिंधा हुआ है। उसकी पूर्णता सर्वोदय के विचारों से हो सकती है।

इस विचार से परिपूर्ण होकर जाति, वर्ण, धर्म, लिंग, वर्ग एवं भाषा आधारित समस्त प्रकार के विभेदों को दूर करने के साथ ही साथ परस्पर पूरकता के विचार का पोषण करने वाला गांधीवादी कार्यकर्ता ही सच्चे अर्थों में ग्रामोदय के सपनों को साकार कर सकेगा।

आदर्श समाज का चित्र

अनेक चिंतकों ने अपनी विचारधाराओं के अनुरूप पृथक पृथक आदर्श समाज का खाका तैयार किया है। यहाँ पर गांधी जी के विचारों में वर्णित आदर्श समाज का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया जा रहा है। गांधी जी के सपनों का आदर्श समाज एक जाति–विहीन एवं वर्ग–विहीन समाज है, जिसमें न कोई उँचा है न कोई नीचा है। सारे काम का महत्व एक सा है एवं सारे कामों की मजदूरी भी एक सी है। जिनके पास अधिक है वे अपने सम्पत्ति का उपयोग खुद के लिए नहीं करते, वे उसे पवित्र धरोहर मानकर ऐसे लोगों की सेवा में उसका उपयोग करते है, जिनके पास कम है। ऐसे समाज में धन्धों के चुनाव में प्रेरक बल व्यक्तिगत उन्नति नहीं होती, बल्कि समाज की सेवा करके आत्माभिव्यक्ति औार आत्म साक्षात्कार करना ही उसका प्रेरक हेतु होता है।

चूँकि ऐसे समाज में सब तरह के कामों का समान आदर होता है और उसके लिए एक सा वेतन मिलता है, इसलिए वंश परंपरागत कुशलता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सुरक्षित रहती है और व्यक्तिगत लाभ के प्रलोभन के लिए उनकी कुरबानी नहीं की जाती। समाज सेवा का सिद्धान्त अनियंत्रित, आत्मीयतारहित प्रतिस्पर्धा का स्थान लेता है। ऐसे समाज में हरएक व्यक्ति कड़ा परिश्रम करता है। जिसे काफी फुरसत रहती है, उन्नति का अवसर मिलता है और शिक्षा तथा संस्कृति के विकास के लिए आवश्यक सुविधायें मिलती हैं, वह कुटीर उद्योगों की तथा छोटे पैमाने पर चलने वाली सघन सहकारी खेती की आकर्षक दुनियाँ को सवारता है। ऐसी दुनियाँ जिसमें साम्प्रदायिकता अथवा जातिवाद के लिए कोई स्थान नहीं होता अन्त में वह स्वदेशी की दुनियाँ है, जिसमें आर्थिक व्यवहार की सीमायें तो अधिक निकट आ जाती हैं, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सीमायें अधिक से अधिक विस्तृत हो जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने आस पास के वातावरण के लिए जिम्मेदार होते हैं। उसमें अधिकारों और कर्तव्यों का नियमन परस्परावलम्बन कें सिद्धान्त से तथा परस्पर के आदान प्रदान से होता है। ऐसे समाज में उसके अंगभूत व्यक्तियों तथा संपूर्ण समाज के बीच कोई संघर्ष नहीं होता। न तो राष्ट्रवाद के संकुचित स्वार्थों के आक्रामक बनने का खतरा रहता है और न ही अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के निरा आदर्श बन जाने का खतरा रहता है।

इस आदर्श समाज में न कोई गरीब होगा न भिखारी, न कोई उँचा होगा न नीचा। न कोई करोड़पति मालिक होगा न आधा भूखा नौकर। न शराब होगी न कोई दूसरी नशीली चीज। सब अपने आप खुशी से और गर्व से अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत करेंगे। वहॉ स्त्रियों की भी वहीं इज्जत होगी जो पुरूषों की, और स्त्रियों तथा पुरूषों के शील और पवित्रता की रक्षा की जायेगी। अपनी पत्नी के सिवा हरएक स्त्री को उसकी उम्र के अनुसार हर धर्म के पुरूष मां, बहन और बेटी समझेंगे। उस समाज मे अस्पृश्यता नही होगी और सब धर्मों के प्रति समान आदर रखा जायेगा।

यद्यपि गांधी जी का उपरोक्त आदर्श समाज एक काल्पनिक समाज है किन्तु असंभव नहीं है। उस दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है। ऐसे समाज का निर्माण ही भारत का स्वर्णिम भविष्य बनाने में सक्षम होगा। गांधी जी का यह समाज :–

- एक सत्यनिष्ठ एवं अहिंसक समाज होगा।
- अन्तिम लक्ष्य भगवद् प्राप्ति होगी।
- सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समानता संभव है।
- महिलाओं का पूर्ण सम्मान होगा।
- परस्पर पूरकता,प्रेम एवं सामंजस्य होगा।
- शोषण विहीन समाज की स्थापना संभव होगी।
- वर्गसंघर्ष एवं गलाकाट प्रतियोगिता नहीं होगी।
- उँच–नीच, जाति–पाँति, अमीर–गरीब एवं धर्म–संप्रदाय आधारित भेद–भाव नहीं होगा।
- राज्य का कठोर नियंत्रण नहीं होगा।
- समस्यायों का निराकरण संघर्ष एवं हिंसा के स्थान पर सत्य एवं अहिंसा से होगा।

गाँधी जी के आदर्श समाज का चित्र उनकी सामाजिक व्यवस्था में साफ दिखता हें जो निम्न हैं।

(क) मार्यादित समाज –: मनुष्य समाज

चूंकि समस्त प्राणियों में से एक प्राणी मनुष्य है अतः गांधी जी मानव समाज को एक मार्यादित या सीमित समाज माना है। ऐसे मनुष्य समाज जिसमें निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए :–

1– **अहिंसा–सामाजिक सद्‌गुण** :– अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण नही है, यह एक सामाजिक सद्‌गुण भी है, जिसका विकास अन्य सामाजिक सद्‌गुणों की भांति किया जाना चाहिये। समाज का नियमन ज्यदातर हमारे व्यवहार मे अहिंसा प्रगट होने पर होता है। इसका राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाये।

2–व्यक्ति बनाम समाज :– हमारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कीमत है, लेकिन हमें यह नही भूलना चाहिये कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपने आप व्यक्ति को सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना सीख कर अपने को उचे दर्जे पर पहुँचाना है। सारे समाज की भलाई के लिये सामाजिक संयम को खुशी से मानना व्यक्ति और समाज –जिसका व्यक्ति सदस्य है, दोनों को समृद्ध करता है।

3– अस्पृश्यता के लिये स्थान नही :–यदि विश्व में जो कुछ है वह सब ईश्वर से व्याप्त है। अर्थात ब्राहमण और भंगी, पंड़ित और मेहतर सब में भगवान विद्यमान हैं तो न कोई ऊँचा है न कोई नीचा है। सभी समान हैं। समान इसलिये कि सब उसी ईश्वर की संतान हैं। इसलिये अस्पृश्यता के लिये समाज में कोई जगह नही होनी चाहिये।

4– वर्णाश्रम :– वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मनुष्य जीवन के उद्‌देश्य की व्याख्या करता है। यह रोज–बरोज धन बटोरने और आजीविका के भिन्न–भिन्न साधन खोजने के लिये पैदा नहीं हुआ है। इसके विपरीत मनुष्य इसलिये पैदा हुआ है कि वह अपने प्रभु को जानने के लिये अपनी शक्ति का एक–एक अणु लगा दे।

इसलिये वर्णाश्रम धर्म उस पर यह पंबन्दी लगाता है कि वह जीवित रहने के लिये सिर्फ अपने बाप दादों का ही काम करें यही वर्णाश्रम धर्म हैं यह धर्म अहिंसक समाज का निर्माण करने में सहायक है।

5– वर्ण रूप में जाति :– आर्थिक दृष्टि से किसी समय इसका बहुत बड़ा महत्व था। इससे परंपरागत कौशल की रक्षा होती थी। इसमें आदमी की प्रतिस्पर्धा मर्यादित होती थी। यह दरिद्रता का सबसे अच्छा इलाज था। और इसमे व्यवसाय सघों के तमाम फायदे मौजूद हैं। यद्यपि इसमें साहस और अविष्कार को पोषण नही मिलता था फिर भी ऐसा नही मालूम पड़ता है कि इन दोनों के रास्तें मे उसने कभी रूकावट डाली हो। और इतिहास की दृष्टि से कहे तो जाति का भारतीय समाज की प्रयोगशाला में मनुष्य का प्रयोग या सामाजिक मेल बिठाने का प्रयत्न माना जा सकता है। यदि इसे हम सफल सिद्ध कर सके तो संसार के समाने हृदयहीन स्पर्धा और लोभ व लालच से पैदा होने वाले सामाजिक विग्रह के उत्तम उपाय के तौर पर हम इसे पेश कर सकते हैं।

6– विवाह :–पत्नी पति की क्रीतदासी नहीं बल्कि उसकी जीवन संगिनी और सहायक है और उसके तमाम सुख–दुःख में बराबर का हिस्सा बटाने वाली है। वह स्वयं अपना मार्ग चुनने के लिये उतनी ही स्वतंत्रता रखती है, जितना उसके पति को है। बाल विवाह के प्रति गॉधी जी के मन में घृणा थी। वे इसका विरोध करते थे और इसे एक सामाजिक बुराई मानते थे। उनका मानना था कि कम उम्र की लड़की का विवाह अधिक आयु वाले व्यक्ति से नही करना चाहिये किंतु वे विधवा विवाह का समर्थन करते थे।

7– अन्तर्जातीय विवाह :– वर्णाश्रम में अन्तर्जातीय विवाह या खानपान की न कोई मनाही थी न होनी चाहिये।

यद्यपि वर्णाश्रम में अन्तरर्जातीय विवाह और खानपान का कोई निषेध नही है, फिर भी उनका मानना था कि इस मामले में जबरदस्ती नही होनी चाहिये। यह व्यक्ति की अपनी मर्जी पर ही छोड़ दिया जाना चाहिये। वह कहॉ शादी करे और कैसे खाये।

8–तलाक :– विवाह दूसरे सब लोगों को छोड़ कर केवल दो जीवन सांगियों के मिलने का अधिकार या स्वीकृति की मुहर लगाता हैं। जब एक साथी दूसरे साथी की इच्छा नैतिक या अन्य कारणों से पूरा न करे सके तो तलाक ले लेना चाहिये।

9–जनसंख्या :–गॉधी जी ने अधिक जनसंख्या को कभी हानिकारक नही माना उनकी राय में उचित भूमि व्यवस्था, सुधरी हुई खेती और सहायक उद्योगों से देश के लोगों का पालन –पोषण हो सकता है। वे गर्भपात और गर्भ निरोधक साधनों के खिलाफ थे। इनके स्थान पर वे जनसंख्या नियंत्रण के लिए नैतिक संयम के समर्थक थे।

10– स्त्रियों का स्थान :–इनका मानना था कि दोनों (स्त्री–पुरूष) एक सा जीवन बिताते हैं, दोनों की एक सी भावनायें है, दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक की सक्रिय सहायता के बिना दूसरा जी नही सकता है। परन्तु युगों से किसी न किसी तरह पुरूष ने स्त्री पर प्रभुत्व रखा है। इसलिये स्त्री अपने को पुरूषों से नीचा समझने लगी, उसने पुरूषों की इस स्वार्थ पूर्ण सीख की सच्चाई में विश्वास कर लिया कि वह पुरूषों से नीचे है। परन्तु ज्ञानी पुरूषों ने उसको बराबरी का दर्जा स्वीकार किया है। फिर भी स्त्री पुरूष दोनों के अपने–अपने कर्तव्य होते है। इन कर्तव्यों का अगर वे निर्वाह नही करते हैं तो पतन की ओर चले जायेगें। वे दोनों को जीवन के हर क्षेत्र में सत्य, अहिंसा को अपनाने के लिये बल दिया है। गॉधी जी ने कहा था मैने यह आशा बॉध रखी है कि काम में स्त्री का असंदिग्ध नेतृत्व रहेगा। इस प्रकार मानव विकास अपना योग्य स्थान पा कर अपने आपको नीचा समझना छोड़ देगा। क्योंकि स्त्री अहिंसा का अवतार है,

लाखों कष्ट सहने के बाद भी अपना प्रेम सभी मनाव जाति को देती हैं। अतः समाज में स्त्रियों को बराबर का दर्जा मिलना चाहियें।

11–स्त्री–पुरूष के समान अधिकार :–गाँधी जी ने कहां था कि सामान्य नियम के तौर पर मैं जीवन भर एक पुरूष के लिये एक पत्नी और एक स्त्री के लिये एक पति के सिद्धान्त का समर्थक हूँ। रिवाज के कारण तथा कथित उच्च जातियों की स्त्रियों कों धर्म की दुहाई देते हुए तमाम तरीके से प्रताड़ित किया जाता है। स्त्रियों का वैधव्य के बाद पुनः विवाह हेय माना जाता है। इसके विपरीत पुरूषों के लिये ऐसा कोइ नियम लागू नही होता है। गाँधी जी ने इसे बेहयायी की बात कही है। उनका मानना था कि विधवा विवाह होना चाहिये और स्त्रियों को भी वही अधिकार प्राप्त होने चाहिये जो पुरूषों को प्राप्त है।

(ख) विशाल समाज – पशु समाज

गांधी जी ने पशु समाज को विशाल समाज कहा है और इस समाज से संबंधित गाँधी जी के कुछ महत्वपूर्ण विचार भी यहाँ दिए जा रहें हैं :–

1– गौ हत्या :–गाय हमारे समाज के लिये बहुत उपयोगी है। गाय हमारे लिये बहुत लाभदायक है। इसका दूध, मलमूत्र से लगाकर मरने के बाद भी वह उपयोगी है। उससे प्राप्त हड्डी एवं चमड़ा सभी काम में आता है। उसके बछड़े खेतों को जोतने तथा बैलगाड़ी में समान ढोने के काम आते है। इसलिये हम इसे माता कहकर पुकारते हैं। उनका मानना था कि सभी को एक गाय जरूर पालनी चाहिये। गौ हत्या पर रोक लगाने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि गौ हत्या करने वाले को कड़ी सजा मिलनी चाहिये।

2–पशुओं के प्रति हिंसा :–पशुओ के प्रति हिंसा नही करना चाहियें, किसी पशु को नही मारना चाहियें क्योंकि उसके अन्दर भी ईश्वर निवास करता हैं और अहिंसा का मतलब ही सभी प्रकार के जीवों के साथ प्यार का व्यवहार करना है। पशुओं पर हिंसा के गाँधी जी खिलाफ थे।

3– विश्व बन्धुत्व :–सम्पूर्ण विश्व में भाई चारे का संदेश देना चाहिये जिससे विश्व से हिंसा को समाप्त किया जा सके। हमे पूरे विश्व में विश्व शान्ति का संदेश देना है। और पूरे विश्व में सभी देशों को आपस में मित्रता पूर्ण व्यवहार करें।

4–पशुबलि :–गांधी जी का मानना था कि सभी प्रकार की पशु बलि पर रोक लगा देना चाहिये। हमारे वेद एवं अन्य धार्मिक ग्रन्थों में कही पशु बलि का उल्लेख नही है, अतः इसको तत्काल बन्द कर देना चाहियें।

सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन

समाज की तात्कालीन आवश्यकताओं के लिए निर्मित व्यवस्थायें परवर्तीकाल में जब अपना मूल्य खो देने के बावजूद समाज में प्रथा एवं परम्परा इत्यादि के रूप में अस्तित्व बनाये रखती है तो इन्हें सामाजिक कुरीतियाँ माना जाता है। भारत में भी अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ विद्यमान हैं। हमारे समाज में फैली निम्न लिखित कुरीतियों का निर्मूलन किये जाने पर गाँधी जी द्वारा बल दिया गया है :–

1–अस्पृश्यता कलंक का निर्मूलन :–

हिन्दू धर्म में जो अस्पृश्यता देखने में आती हैं वह अमिट कलंक है। यह हमारे समाज में प्राचीन काल में नही थी। अस्पृश्यता की घृणित भावना हम लोगों में तब आयी होगी, जब हम अपने पतन की चरम सीमा में रहे होगे। तब से यह मानवता के लिए भयंकर अभिशाप बन गयी है। गांधी जी का मानना था कि हिन्दू धर्म में दिखाई देने वाली अस्पृश्यता का वर्तमान रूप भगवान और मनुष्य के खिलाफ किया गया सबसे बड़ा अपराध है। यह ऐसा विष है जो हिन्दू धर्म के प्राण को निःशेष किये दे रहा है। इसका किसी शास्त्र या वेद में सर्मथन नही किया गया है। भारत में प्रान्तों से लेकर गावों तक अस्पृस्यता विभिन्न रूपों में पायी जाती हैं। इसने अस्पृश्यों और स्पृश्यों दोनों को नीचे गिराया हैं। इसने मानव जाति का विकास रोक रखा है। इसे जितनी जल्दी हो सके मिटा देने से ही इस देश और मानव जाति का कल्याण होगा।

अगर हम सच्चे अर्थो मे गाँधी जी के सपनों का स्वराज लाना चाहते हैं तो अस्पृश्यता के कलंक को मिटाना होगा। इस बात से इनकार नही किया जा सकता है कि अस्पृश्यता एक पुरानी प्रथा है, लेकिन यदि वह एक अनिष्ट वस्तु है, तो उसकी प्राचीनता के आधार पर उसका बचाव नही किया जा सकता हैं।

अस्पृश्य लोगों का बस्ती से दूर रखना यानी उन्हे समाज से अलग कर देना उनका शोषण है, उन्हे सामाजिक विकास की प्रक्रिया से दूर करना हैं। गाँधी जी उसके खिलाफ थे। ऊँची जाति के लोग अस्पृश्यों को नीचा समझते हैं, जबकि भगवान के दरबार में हमारी अच्छाई बुराई का निर्णय इससे नही होता कि हम

क्या खाते–पीते हैं, हमने किस –किस को छूआ है, बल्कि इससे होता हैं कि हमने किन–किन दीन दुखी लोगों की सेवा की है। इसी आधार पर भगवान की कृपा दृष्टि प्राप्त होती है।

जिस समाज में भंगी का अलग पेशा माना गया है, वहां कोई बड़ा दोष पैठ गया है। इस जरूरी काम को सबसे नीच किसने माना इसका इतिहास नहीं है। लेकिन जिसने माना इसको उसने हम पर उपकार नही किया। हम सब भंगी हैं, यह भावना हमारे मन में बचपन से होनी चाहिये। उसका सबसे आसान तरीका यह हैं कि जो समझ बूझकर ज्ञान पूर्वक यह करेगा,वह उसी क्षण धर्म को निराले ढ़ंग से और सही तरीके से समझने लगेगा।

2– भिक्षा वृति :–

गाँधी जी भिक्षा वृति के घोर विरोधी थे और वे कहते थे कि जो लोग गरीब लोगों को भीख देते हैं, उन्हे भीख न देकर काम देना चाहिऐ जिससे वे आत्म सम्मान से जी सके।

3– बाल विवाह :–

गाँधी जी बाल विवाह प्रथा के घोर विरोधी थे। उन्होंने इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया क्योंकि कम उम्र में विवाह होने से बालकों का शारीरिक तथा मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है, जिससे समाज के विकास में बाधा खड़ी होती हैं।

4– विधवा विवाह :–

कोई स्त्री यदि ज्ञान और स्वेच्छा पूर्वक वैधव्य को अपनाती है तो उसके जीवन की शोभा और गौरव बढ़ता हैं, घर पवित्र होता हैं, धर्म का उत्थान होता है। किन्तु धर्म या रिवाज से जबरदस्ती लादा हुआ वैधव्य गलत हैं। बाल विधवा का विवाह कर देना चाहिये और अच्छी तरह करना चाहिये जैसे उनका कभी विवाह हुआ ही नही था। इस प्रकार विधवा विवाह के पक्ष में गाँधीजी थे।

5– दहेज प्रथा :–

गाँधी जी दहेज प्रथा को एक सामाजिक अभिशाप मानते थे और वे दहेज को किसी भी रूप मे स्वीकार नही करते थे। यहा तक की वे कन्यादान को भी गलत मानते थे। वे कहते थे की कन्या कोई गाय या धन नही हैं, जिसे आप दान कर रहे हैं। और यदि हमें एक सर्वोदय सत्य और अहिंसा पर आधरित समाज का निमार्ण करना है, तो इस अभिशाप को हमें अपने समाज से निकाल देना चाहिये।

6– मादक पदार्थों का सेवन :–

गाँधी जी मादक पदार्थों के सेवन के घोर विरोधी थे क्योकि यह तन, मन,धन तीनों को नुकसान पहुचाता है और समाज को खोखला कर देता है। अतः इसको जितनी जल्दी संभव हो समाज से समाप्त कर देना चाहिये। उनके अनुसार सत्य अहिंसा को तभी आगे बढ़ाया जा सकता है, जब हमारा तन, मन स्वस्थ हो। इसके लिये हमें मादक पदार्थों का उत्पादन ही समाज से समाप्त कर देना चाहिये जो मानव जाति की सबसे बडी दुश्मन है।

स्वराज्य

गांधीजी के अनुसार स्वराज्य एक पवित्र शब्द है। यह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म संयम है। अंग्रेजी शब्द इन्डिपेण्डेन्स अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का या स्वछन्दता का अर्थ देता है। वह अर्थ स्वराज्य शब्द में नहीं है।

वे कहते थे कि स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक सम्मति के अनुसार होने वाला भारत वर्ष का शासन। लोक सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी से बड़ी तादाद के मत के जरिए हो, फिर वे चाहें स्त्रियां हों या पुरूष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो। स्वराज जनता में इस बात को पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसके नियमन करने की क्षमता उसमें है।

स्वराज में जाति धर्म का कोई स्थान नही हो सकता है। शिक्षितों, धनवानों, किसानों, मजदूरों, लूले, लंगडे, अन्धे सभी के लिये समान स्वराज होगा। और राजा, किसान, जमींदार, हिन्दू, मुसलमान सभी धर्मों जातियों आदि के साथ कोई भेद भाव नही हो सकता है। जीवन की आवश्यकताओं का उपयोग जो राजा और अमीर करते हैं, वे सभी गरीबों व निर्धनों को मिलनी चाहिये। हमारा स्वराज तब तक पूर्ण नही होगा जब तक गरीबों को ये सारी सुविधाये नही मिल जाती हैं। स्वराज का अर्थ हमे सभ्य बनाना हैं। हमारी सभ्यता का मूल तत्व ही यह है कि हम अपने सब कामों में, फिर वे निजी हो या सर्वजानिक, नीति के पालन को सर्वोच्च स्थान दें।

स्वराज सत्य अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही हासिल करना चाहिये उन्ही के द्वारा ही हमें उनका संचालन करना और इन्ही के द्वारा कायम रखना है। प्रजातंत्र में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिये। लेकिन यह सब अहिंसा के द्वारा ही हो सकता है, ऐसा प्रजातंत्र जिसमें हिंसा के लिये कोई स्थान न हो।

स्वराज का अर्थ ही सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिये लगातार प्रयत्न करना, फिर वह नियंत्रण चाहे विदेशी शासन का हो या स्वदेशी सरकार का। सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए कुछ आदमी नही चला सकते। वह तो हर एक गाँव के लोगों द्वारा आत्म सयंम और आत्म शासन के माध्यम से चलायी जाती हैं।

सच्ची स्वतंत्रता

सच्ची स्वतंत्रता वह है जब लोगों में आत्म सयंम और आत्म शासन हो और देश के गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करें की यह देश उनका है और उसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है। समाज सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों का प्रयोग करे तथा जनता में पारस्परिक सहयोग और सदभाव हो। नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को समान अवसर मिले।

भारत गाँवो का देश हैं और सच्चा भारत गाँवो में ही बसता है। सच्ची स्वतंत्रता तब होगी जब हमारे गाँवों का समग्र दृष्टि से समुचित विकास हो और बुनयादी जरूरतें स्वालम्बन के आधार पर पूरी की जा सके तथा अपनी आवश्यकताओं के लिये दूसरों पर निर्भर न रहना पड़े। गाँव में ही एक नाटकशाला, पाठशाला, सभाभवन हो पीने का पानी, बुनयादी शिक्षा बच्चों के लिये उपलब्ध हो। गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर हो। जाति– पात अस्पृश्यता जैसे भेद –भाव न हो। गाँवों में स्वच्छता, प्रकाश, हवा इत्यादि का प्रबन्ध हो तथा खादी के अलावा अनेक कुटीर उद्योगों को स्थापित किया जायें जिससें सबको रोजगार मिले।

गांधीजी चाहते थे कि भारत एक ऐसा राज्य बनें जिसमें सभी धर्मों के प्रति समान आदर हो और न्याय का राज्य हो। गरीबों का राज्य हो, जाति– पात, धर्म के नाम पर भेद भाव न हो तथा सभी जनता को बराबरी का स्थान हो। न कोई नंगा या भूखा रहे, न कोई अशिक्षित हो और न कोई भेद भाव हों। भारत में सबका उदय हो जो सत्य अहिंसा पर आधारित हो, जिसमें कोई ब्यक्ति किसी आधार पर किसी का शोषण न कर सके, जिससे कि शोषण विहीन समाज बने। जब ये सारी बातें हमारे समाज में आ जायेगी तभी हम एक साथ प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ सकेगें। यहीं गाँधी जी के सपनों के स्वतंत्र भारत की तस्वीर थी।

ग्राम गणराज्य की स्थापना के रूप में ग्राम स्वराज

भारत एक गाँवों का देश हैं। गाँव उतने ही पुराने हैं, जितना भारत है। शहरों को विदेशी आधिपत्य ने बनाया है। जब यह आधिपत्य मिट जायेगा तब शहरों को गाँव के मातहत होकर रहना पड़ेगा। शहरों द्वारा गाँव की सारी दौलत हड़प की जा रही है। गाँवों का शोषण खुद एक संगठित हिंसा है। अगर हमें स्वराज की रचना अहिंसा के पाये पर करनी है, तो गाँवों को उचित स्थान देना होगा। यदि गाँवों का नाश हुआ तो भारत का भी नाश हो जायेगा। ग्राम स्वराज एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी अहम जरूरतों के लिए पड़ोसी पर निर्भर नही रहेगा, फिर भी बहुत सी जरूरतों के लिये दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा।

वे चाहते थे कि प्रत्येक गाँव अपनी जरूरत का तमाम अनाज, कपड़े के लिये कपास तथा अन्य उपयोगी फसलें बोये जिसे बेच कर आर्थिक लाभ उठा सके और पशुपालन करे। गाँव में नाटकशाला, पाठशाला, पीने का पानी, बुनयादी शिक्षा सबको मिलें। गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर हो, जात– पॉत का भेद–भाव बिलकुल न रहे। ग्राम शासन के लिये सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रमीण समाज का शासन बल होगी। गाँव की रक्षा के लिये गाँव में सैनिकों का एक ऐसा दल हो जो बारी–बारी से गाँव की पहरेदारी करे। गाँव का शासन चलाने के लिये प्रत्येक गाँव की पॉच व्यक्तियों की पंचायत हो जिसे गाँव के बालिग स्त्री–पुरूष द्वारा चुना जाये। इस पंचायत को सभी प्रकार आवश्यक सत्ता व अधिकार प्राप्त होंगे, जो अपने कार्य काल में स्वयं की धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा को संगठित करेगे और संयुक्त रूप से काम करेगें।

इस ग्राम शासन में ब्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माण करेगा, उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम के वश में होकर रहेंगे। और वह सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबला कर सकेगा एवं अपने गाँव की रक्षा के लिये मर मिटेगा।

ग्राम पुनर्निर्माण में गाँवों की स्वच्छता की पूरी व्यवस्था रहे, झोपड़ियों में पर्याप्त प्रकाश, हवा का प्रबन्ध रहे, इसके निर्माण में उपयोगी सामान ऐसा हो जो पास में मिल जाये। घरों में आँगन हो जिसमें साग–सब्जी उगायी जा सके एवं जानवर बॉधे जा सके। सड़के पक्की हो पानी का प्रबन्ध हो, सभा भवन, स्कूल, चारागाह, सहकारी डेरी, औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था तथा झगड़ों के निपटाने के लिये ग्राम पंचायत हो। गाँव अपना अनाज, साग–सब्जी, फल और खादी के लिये कपास स्वयं पैदा करे। गाँव में कारीगरी का विकास होना चाहिये जिससे गाँव के कारीगारों के द्वारा बनाये सामान की मांग निर्मित की जा सके, तभी गाँवों का पूरा–पूरा विकास हो सकेगा।

इसी तरह गाँवों की पुनर्रचना का कार्य आज से शुरू होना चाहिये जो स्थायी भी हो। गाँवों की अर्थ रचना में शहरों द्वारा ग्रमीणों का शोषण और उनकी सम्पत्ति का हरण हो रहा है। शहर में ऐसी कोई चीज नही है जो गाँव में न बनायी जा सके। गाँवों को निश्चित रूप से स्वावलम्बी बनाना चाहिये। ग्रामोद्योगों के द्वारा ही बनी चीजों से गाँव को अपनी जरूरतों को पूरा करना चाहिये, ग्रामोद्योगों का विकास करना चाहिये जिससे गाँव के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो। ग्रामोद्योगों का यदि लोप हो गया तो भारत के सात लाख गाँवों का सर्वनाश ही हो जायेगा। यदि गांधी जी के सपनों के अनरूप गाँवों का पुनर्निर्माण किया जायेगा तभी सच्चे अर्थों में ग्रामस्वराज की स्थापना की जा सकेगी।

आर्थिक स्वावलम्बन

हमारे देश में, जो गाँवों का देश है आर्थिक स्वावलम्बन का अर्थ है देश के सभी गाँव आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बने। इसके लिये प्रत्येक गाँव के लोगों को खादी का प्रयोग, सूत काटना, कपास उगाना, कपड़े तैयार करना इत्यादि को अपनाना होगा इससे बेरोजगारी दूर होगी और लोगों को काम मिलेगा।

वही ग्रामोद्योग के तहत लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा जैसे – हाथ से पीसना, हाथ से कूटना, पछोरना, साबुन बनाना, तेल पेरना, और इस तरह के सामाजिक जीवन के लिये जरूरी और महत्व के धन्धों के अपनाये बिना गाँवो की आर्थिक रचना पूर्ण नही हो सकती हैं। हर भारत वासी को गावों में हाथ से बनी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि गाँवों में बनी वस्तुओं में गुणवत्ता भी होती है और वह स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद भी होती हैं। अतः गाँव इससे आत्म निर्भर होंगे और उत्पादन के लिये सभी लोग मिलकर काम करते हैं जिससे सामूहिकता की भावना उत्पन्न होती है, जिससे प्रेम पूर्ण सम्बन्ध एवं सामाजिकता का विकास होता है।

गाँव में खेती में अपने हाथ की बनायी खाद का प्रयोग करके साग–सब्जियों एवं अनाज की अच्छी पैदावार ले सकते हैं। पशुपालन के द्वारा डेरी व्यवसाय आदि तमाम तरह के व्यवसाय करके ग्रामीण अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं।

उनका मानना था कि यंत्रीकरण नही करना चाहिये और ग्रामवासियों को कुछ काम देना चाहिये, जो यन्त्रों के द्वारा सम्भव नहीं है, उनके उद्धार का सच्चा मार्ग तो यहीं है कि जिन उद्योग धन्धों को अब तक ये करते चले आये हैं, उन्हीं को भली भाँति जीवित किया जाये। इससे गाँव के लोग अपनी जरूरतों के समान का उत्पादन स्वयं कर लेगे और बाहर बेच कर लाभ भी कमायेगें। जिससें हमारे गाँव के लोग आत्म निर्भर हो जायेगे। इससे गरीबी, निर्धनता और भुखमरी समाप्त हो जायेगी।

अतः अगर देश की गरीबी, भूखमरी, निर्धनता, को समाप्त करना है तो गाँधी जी के बताये हुए रास्ते पर चलकर ही इसे समाप्त किया किया जा सकता है, तभी एक खुशहाल भारत का सपना पूरा होगा।

सामाजिक मूल्य एवं सास्कृतिक विरासत

सामाजिक मूल्य और सांस्कृतिक विरासत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मनुष्य को जिन बातों की बुनियाद पर समाज में इज्जत मिलती है उन बुनियादों का नाम सामाजिक मूल्य है। प्राचीन समय में इसे सामाजिक सत्ता या प्रतिष्ठा कहते थे। सर्वोदय की दृष्टि से जीवन विद्या एवं कला दोनों है, विद्या से जहां हमें ज्ञान प्राप्त होता है वही कला हमे जीना सीखाती है या जीने का ढ़ंग बताती हैं।

अपने पूर्वजों से मिला हुआ या सीखा गया ज्ञान संस्कृति है। सांस्कृतिक विरासत परंपरागत रूप से चला आ रहा एक विशेष प्रकार का आचरण या पद्धति है, जैसे –हम अपने गुरूजनों से मिलते ही चरण छू लेते हैं। कुछ अन्य लोग उनके मिलने पर हाथ चूम लेते हैं यह सब एक सांस्कृतिक विरासत है। लेकिन संस्कृति का सही अर्थ जीवन में साझेदारी है, यह दूसरों के जीवन में शामिल होना, और दूसरों को अपने जीवन में शामिल करना है। यह जिन्दगी की साझेदारी, तहजीब, कलचर, या संस्कृति कहलाती है।

हमारी सांस्कृतिक विरासत में सहानुभूति, सदाचार, उपकार का महत्वपूर्ण स्थान है। लोगों के सुख, दुःख मे।शामिल होना, लोगों के दुःखों को दूर करना, लोगों की मदद करना, लोगों से अच्छा व्यवहार करना, हमारी सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण पहलू हैं। आने वाली पीढ़ी को अच्छा रास्ता दिखाना जिससे मानवीय गुणों का विकास हो, ताकि सामाजिक कल्याण हो सके और हमारा समाज नैतिक एवं अध्यात्मिक दृष्टि से उन्नति कर सके। यही हमारी सास्कृतिक विरासत हैं जिनसे हमारे सामाजिक मूल्यों का निर्माण होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक है।

गांधी जी ने जिन सामाजिक मूल्यों के विकास पर विशेष बल दिया है उनमें से कुछ मुख्य यहॉ दिए जा रहें हैं।

1– सहानुभूति :–

जीवन कला का उद्देश्य सहानुभूति हैं जीवन की कला ब्रहम विद्या है। इसका प्रमुख उद्देश्य–जीव मात्र के लिये, स्रष्टि मे जितने प्राणी है,उन सबके लिये

समादर देना है। प्राणी मात्र के लिये आदर में सहानुभूति भी आती है, उसकी अनुभूति मेरी अनुभूति हो जाती हैं। गांधी जी का कहना था कि दूसरे के दुःख में शामिल होने की यह प्रक्रिया ही सहानुभूति हैं, जीवन मात्र के लिये सहानुभूति ही जीवन की ब्रहम विद्या है। सहानुभूति सहजीवन की सद्भावना है। जिसे हम जीवन विद्या कहते हैं वह सहजीवन की विद्या है। यह विद्या मुझे आपके साथ और आपको मेरे साथ जीना सिखाती है। हम एक दूसरे की जिन्दगी में शामिल हो जाते है।

2– सदाचार :–

यह सामाजिक जीवन का सबसे बड़ा मूल्य हैं यदि किसी से आप आदर या सम्मान पाना चाहते हैं तो पहले उसे आदर सम्मान दो, यानि पहले दो बाद में लो। आप जितनी अपेक्षा रखते हो उससे अधिक देने की इच्छा रखो क्योंकि हमें दूसरों के जीवन में शामिल होना हैं।

3– उपकार :–

उपकार का अर्थ अपने जैसे दूसरे को देखना। 'उप' का अर्थ हैं समीप, अपने नजदीक दूसरों को करना उपकार है। दीन दुखी या परेशान व्यक्तियों की निस्वार्थ भाव से मदद करनी चाहिये, क्योंकि यदि हमें दूसरों को अपनी जिन्दगी में शामिल करना है तो दूसरों का सुख देखने में सुख होता हैं और दुःख देखने मे। दुःख होता है। इसके लिए मदद के लिये पहला कदम हमे ही उठाना चाहिये। उपकार सामाजिक मूल्य तभी बनता है जब उसमे प्रत्युपकार नही होता है। उपकार निरपेक्ष होना चाहिए। सापेक्ष उपकार उपकार नही होता हैं।

यहीं कुछ प्रमुख सामाजिक मूल्य हैं जिन पर समाज टिका हुआ हैं।

सामाजिक जीवन की प्रतिष्ठा को हम मूल्य कहते हैं प्रामाणिकता उसका पहला लक्षण हैं और उसकी कसौटी हैं कि अपने जैसा दूसरों को जानना और समझना।

<u>सामाजिक मूल्य के लक्षण –</u>

सामाजिक मूल्य के निम्नलिखित पॉच लक्षण होते है।

<u>1– प्रामाणिकता–</u> जो सबके लिये समान रूप से लागू होता हैं उसे 'मूल्य' कहते है उसमे प्रामाणिकता और सच्चाई होना चाहिये।

2– <u>सार्वभौमिकता</u>– मूल्य का दूसरा लक्षण यह है कि वह सबके लिये समान रूप से लागू हो व्यापक हो।

<u>3– निरपेक्षता –</u> यह मूल्य का तीसरा प्रमुख लक्षण हैं वह अपने ही नाम पर चलता हैं दूसरे के नाम पर नही। जैसे झूठ सत्य के नाम पर चलता हैं

इसलिये झूठ अपने पैर पर खड़ा नही हो सकता हैं इसलिये झूठ मूल्य नही हैं,सत्य मूल्य हैं।

4– स्वतः प्रमाणित– मूल्य हमेशा स्वप्रमाणित होते हैं उन्हे प्रमाण की आवश्यकता नही होती हैं।

5– स्वभाव के अनुरूप– जिसका हम संरक्षण करना व विकास करना चाहते हैं वह स्वभाव है।और यह स्वभाव मनुष्य के स्वभाव के अनुरूप हो जिसे हम रखना चाहतें।

अतः ये सामाजिक मूल्य के लक्षण हैं जिस पर समाज गातिशील हैं।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण एवं ग्राम स्वराज

सत्ता के विकेन्द्रीयकरण का आशय उस स्थिति से है जिसमें उच्चस्तर से निम्नस्तर को राजनैतिक दृष्टि से निर्णय करने, कार्यक्रम नीति बनाने, संसाधन जुटाने तथा बिना उच्च हस्ताक्षेप के निर्देशन, परिवेक्षण करने का अधिकार निम्नस्तरीय सत्ता को दिया जाता हैं।

गाँधी जी ने पाँच स्तरीय स्थानीय व्यवस्था की परिकल्पना की थी जो कि ग्राम पंचायत, तालुक पंचायत,जिला पंचायत प्रान्तीय पंचायत और सर्वदेशीय पंचायत का एक पद सोपानीय ढ़ॉचा हैं। जिसमें प्रशासनिक व्यावस्था का स्वरूप भी पिरामिड नुमा रखा जाये। इसके निम्न स्तर पर देश के विभिन्न ग्रामीण समुदायों से युक्त विस्तृत आधार होगा, उच्चस्तरीय पंचायतों के कार्य होगे – निम्न स्तरीय पंचायतों का आवश्यक तथा विशिष्ट निर्देशन करना और ग्राम पंचायतों की क्रियाओ को समन्वित करना ताकि समाज सेवा और प्रशासन समबन्धी उनकी सोच में वृद्धि हो सके।

परन्तु इसमें ग्राम पंचायत को ही भारतीय प्रशसान की मूल इकाई माना गया जो कि केन्द्रिय पंचायत को आदेश देने के लिये सक्षम होगी न कि केन्द्र राज्य को आदेश देगा। ग्राम ही प्रशासन की वास्तविक एवं क्रियाशील इकाई होगी।

यंत्रीकरण नही करना चाहिये और ग्रामवासियों को कुछ काम देना चाहिये, जो यन्त्रों के द्वारा सम्भव नही हैं, उनके उद्वार का सच्चा मार्ग तो यही हैं कि जिन उद्योग धन्धों का अब तक ये करते चले आये हैं उन्ही को भली भॉति जीवित किया जाये।

गाँवों का अपना राज होगा, उन्हें विकास के लिये योजना बनाने का अधिकार होगा, उनकी अपनी न्याय व्यवस्था होगी, स्कूल,नाटकशाला होगी उनका अपना उत्पादन होगा वो आत्म निर्भर होगे वे अपने निर्णय स्वयं कर सकेगे, उनकी अपनी शिक्षा व्यवस्था होगी, लघु–कुटीर उद्योग होगे उन्हे अपने कानून बनाने का अधिकार होगा। सभी गाँव आर्थिक, सामाजिक, एवं राजनैतिक दृष्टि से मजबुत होगे जिनका सत्य, अहिंसा स्वावलम्बन आधर होगा। तभी गाँधी जी के सपनों का भारत बनेगा।

बुनियादी शिक्षा

गाँधी जी ने कहा था कि मेरी योजना में हाथ–अक्षर लिखना सीखने के पहले औजार चलाना सीखेगे। आंखे जिस तरह दूसरी चीजों को तस्वीरों के रूप देखती हैं और उन्हे पहचानना सीखती हैं, उसी तरह अक्षरों और शब्दों को तस्वीरों की तरह देखकर उन्हे पढ़ना सीखेगें और कान चीजों के नाम वाक्यों के आशय पकड़ना सीखेगें।

कहने का अर्थ सारी शिक्षा स्वाभविक हो,बालको पर वह लादी नही जाये, बल्कि बच्चें उसको स्वतः खुशी से सीखेगें।

उनका मानना था कि हाथ का काम शिक्षा का केन्द्र बिन्दु हो, शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य हो और बुनियादी शिक्षा केवल मातृभाषा मे ही दी जाये। बच्चों से ऐसी वस्तुओं का निर्माण कराया जाये जिन्हें बजार में बेचा जा सके। बच्चे भी इसे आनन्द से करेगें और उनकी वुद्धि का विकास होगा। यह बुनियादी शिक्षा हमारे देश के बहुत से बच्चों को पुनः गाँवों से जोड़ देगी।

यह शिक्षा, बालक या बलिका अपने स्कूल जाने के दिनों से ही हाथ उठाने लगे, इसकी ब्यवस्था करती है। यह शिक्षा मन और शरीर दोनों का विकास करेगी और भविष्य के भारत का निर्माण करने में सहायक होगी। बुनियादी शिक्षा की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित होगी :–

1– इसके तहत अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी।

2– यह शिक्षा हस्त श्रम प्रघान होगी।

3– बुनियादी शिक्षा अपनी मातृभाषा मे दी जायगी।

4– शिक्षा स्वाभाविक एवं व्यवहारिक होगी।

5– शिक्षा जीवन में उपयोगी होगी।

बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य

बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के माध्यम से बालकों का शारीरिक,बौद्धिक, मानसिक और नैतिक विकास करना हैं। यह शिक्षा शैक्षणिक दृष्टि से सही और आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध होगी। शिक्षण के दौरान बच्चों से जो भी निर्माण कराया जाये वह अर्थ पूर्ण हो, अपव्ययकारी कदापि न हो। यह भी ध्यान दिया जाय कि शिक्षण के दौरान बच्चों द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करना सीखना चाहिये। यह शिक्षा नागरिकता के गुणों का विकास करने वाली और स्वावलम्बी बनाने में सहायक होगी। यह शिक्षाशारीरिक श्रम के प्रति हीन भावना और आलस समाप्त करेगी। इस शिक्षा में बालको की शिक्षा का खर्च निकल आयेगा और वे ऐसे धन्धों को सीख लेगें जिसे वे अपने आगे के जीवन में जीविका के लिये उपयोग कर सकते हैं। और हमारा भाविष्य आत्म निर्भर होगा। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा के निम्नखित उद्देश्य होगें :–

1. बच्चों में इस शिक्षा से शारीरिक श्रम के प्रति हीन भावना समाप्त होगी।
2. बच्चों को अच्छे नागरिक बनाने में सहायक होगी।
3. बच्चों का शारीरिक, बौद्धिक, एवं नैतिक विकास करेगी।
4. बच्चों को स्वावलम्बी बनायेगी।
5. भविष्य में इस शिक्षा के द्वारा देश की बेरोजगारी, गरीबी, निर्धनता को समाप्त किया जा सकता हैं।

कृषि एवं पशुपालन

कृषि एवं पशुपालन दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा इन्ही से हमारे गाँवो की पहचान होती हैं। भारत जो गाँवों का देश हैं एवं एक कृषि प्रधान देश है। यहां कृषि में गाँव के लोग अपनी आवश्यक जरूरते पूरी करने के लिये अनाज, साग–सब्जियां, खादी के लिये कपास आदि की खेती करें और मादक पदार्थो की पैदावार न करें।

और कृषि में सहकारी खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिये जिससे गाँवों के लोगों को आपस में मिलकर खेती करने का अवसर प्राप्त हो सके। आपसी सहयोग एवं प्रेम भाव से मिलकर सामूहिक खेती करने से उत्पादन में वृद्धि होगी तथा समय पर सब काम हो जायेगें तथा साथ –साथ काम करने जैसे – कटाई,निराई, बुवाई आदि साथ–साथ करने से सामाजिक सम्बन्धों का विकास होगा। क्योंकि जैसें–जैसे उत्पादन सम्बन्ध बदलते हैं, वैसे–वैसे सामाजिक सम्बन्ध बदलते हैं। इसलिये हमारे उत्पादन में भी सामाजिकता होनी चाहिये। और जो भी उत्पादन हो वो सामूहिक हो क्योंकि सामूहिक उत्पादन से गाँव के लोगों में सामूहिकता का विकास होगा।

उनका मानना था कि हमारे खेतों में देशी एवं गोबर की खादों का ही प्रयोग होना चाहिये न कि रासायनिक खादों का क्योंकि रासायनिक खादों से जो उत्पादन होगा वो हमारे शारीरिक एवं मानसिंक विकास के लिये बहुत नुकसानदेय होगा, वहीं वह ध्ववातावरण एवं हमारी भूमि को भी बहुत नुकसान पहुचायेगा। अतः इन्हे जितनी जल्दी हो बन्द कर देना चाहिये।

आर्थिक फसलों को उगाकर बजार में बेचकर किसान कुछ लाभ कमा सकते हैं, कृषि का विकास होना चाहिये, खेती की जुताई से लेकर कटाई के सभी साधन गाँवों मे ही मौजूद हैं, जैसे जुताई बैलों से की जाये, बीज अपने हो कटाई, बुबाई, निराई गाँव के ही लोग आपस में मिलकर करे न कि मशीनों का सहारा ले इससे प्रेम और सहयोग की भावना बढ़ेगी।

पशु पालन भी कृषि से जुड़ा हुआ हैं और पशु हमारे लिए बहुत लाभदायक हैं। उदाहरण के लिए गाय हमारे लिये बहुत लाभदायक हें इसका दूध, मलमुत्र से लगाकर मरने के बाद भी वह उपयोगी है, उसका हड्डी चमड़ा सभी काम में आता हैं और उसके बछडे खेतों को जोतने तथा बैलगाड़ी में समान ढोने के काम आते हैं। इसलिये हम इसे माता कहकर पुकारते हैं। और सभी को एक गाय जरूर पालनी चाहिये। गौवध पर रोक लगानी चाहिये एवं करने वाले को कड़ी सजा मिलनी चाहिये।

दूसरे पशु जैसे भैस, भेड़, बकरी,घोड़ा आदि को भी पालना चाहिये, जिससे दूध तथा सर्दी के वस्त्रो के लिये भेड़ो से ऊन भी प्राप्त किया जा सकता हैं। वही घोड़ो को सवारी करने एवं माल ढोने में प्रयोग किया जा सकता हैं।

जहां इनसे इतने फायदें हैं वही इनके मलमुत्र से अच्छी खादों को तैयार किया जा सकता है जो हमारी खेती के लिये बहुत उपयोगी साबित हो सकती हैं।

जहां इन खादों से खेती में अच्छा उत्पादन होता है वही हमारे पशुओं के लिये हमारे खेतों से हरा चारा मिलता है।

कृषि उत्पादन में जो उत्पादन हमारे प्रयोग के बाद बच जाता हैं जैसे गेहूँ का भूसा, धान का पुआल आदि का उपयोग हमारे पशु भोजन के रूप में करते है। और वो हमें दूध, कृषि के लिये खाद, जुताई के बछड़े, आदि प्रदान करती हैं।

अतः कृषि एवं पशुपालन दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं, एक का विकास दूसरे का विकास हैं। और यही दोनों हमारे गाँवों का आधार हैं। शदियों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था के इन मजबूत आधार स्तम्भों को निरंतर संरक्षित किये जाने की आवश्यकता है।

उद्यमिता

गाँवों के विकास के लिए गांधी ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने पर बल दिया है। उनका मानना था कि गाँवों से जो कच्चा माल शहरों या विदेशों को भेजा जाता हैं, उसी कच्चे माल का उपयोग हम गाँवो में करे। हमें उसी कच्चे माल से वस्तुओं को तैयार करके बजार में बेचना चाहिये, जिससे गाँवों की आर्थिक स्थिति में सुधार होने के साथ– साथ गाँवों की बेरोजगारी भी दूर होगी।

उद्यमिता के लिये सारा कच्चा माल हमारे खेतों, बागों और पशुधन से ही प्राप्त हो सकता हैं। जैसे हम कपास की खेती करें और चरखे से सूत काटकर खादी के कपड़े बजार में बेचों और अनाज, सांग–सब्जियों का उत्पादन करे, महिलाओं द्वारा चावल, दाल को साफ कर उनकी पैकिंग करके बजार में बेचें। इसी प्रकार बहुत प्रकार के आचारों के फल गाँवों में ही उपलब्ध हो जाते हैं। इनसे आचार बनाकर बजार में बेंचा जा सकता हैं, जिससे महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

इसी प्रकार जंगलों से बांस और लकड़ियों से कुर्सिया,मेंज आदि बहुत से सुन्दर वस्तुओं का निर्माण आसानी से किया जा सकता हैं। वही पशुओं से प्राप्त दूध से सहकारी डेरी खोली जा सकती और दूध से बने सामान जैसे दही, मट्ठा, घी आदि को गाँव में ही बनाकर बेचा जा सकता हैं। इसके अलावा भी बहुत सारे व्यवसाय किये जा सकते हैं। इन उद्यमों को करने के लिये न ही बड़ी पूँजी की आवश्यकता होती हैं, न मशीनों की और न ही विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की। ये उद्यम पराम्परागत रूप से अपने पूर्वजो से हमें प्राप्त हुए हैं, जिसे हम अच्छी तरह से कर सकते हैं। इसके परिणाम स्वरूप गाँव के लोगो को रोजगार के लिये शहर नही जाना होगा हमें गाँव में ही रोजगार प्राप्त हो जायेगा एवं गाँवो की आर्थिक स्थिति में भी सुधार होगा। गाँव निर्मित वस्तुऐं शुद्ध स्वस्थप्रद और पार्यावरण के अनुकूल बनेंगी तथा इनको करने के लिये हमें किसी सरकार की तरफ देखने की भी जरूरत नही होगी। इन उद्यमों को गाँव में लोग आपसी सहयोग से चला लेगें। गांधी जी का कहना था कि जैसे–जैसे उत्पादन सम्बन्ध बदलते हैं, वैसे –वैसे सामाजिक सम्बन्ध बदलते हैं।

इसलिये हम चाहते हैं कि उत्पादन भी सामाजिक हो ओर उपभोग भी सामाजिक हों, जिससे सामाजिक न्याय का सवाल स्वतः हल हेा जायेगा, और आर्थिक समानता भी आयेगी।

इसलिये ग्राम में प्रधानतः उद्यमिता की जरूरत हैं न की भारी मशीनीकरण तथा उद्योगों की अगर देश को बचना हैं तो गाँधी जी के बताये उद्यमों को अपनाना होगा तभी हमारे देश से गरीबी, निर्धनता, भुखमरी बेरोजगारी दूर की जा सकती हैं।

युवकों की भूमिका

हम एक ऊँची ग्राम सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। हमारे देश की विशालता, आबादी की विशालता, हमारी भूमि की स्थिति तथा आबोहवा ने मानो यह तय कर दिया हैं कि हमारी सभ्यता ग्राम सभ्यता हैं। इसके दोष मशहूर हैं लेकिन कोई ऐसा नही हैं जिसका इलाज न हों सकता हों। लेकिन इन दोषों को दूर करने की जिम्मेदारी आज के युवा वर्ग की हैं। गांधी जी का मानना था कि राष्ट्रीय विकास देश के युवाओं की सक्रियता पर निर्भर है। इसके लिए देश के युवक–वर्ग को ग्राम जीवन को अपनाना हेागा, अपने जीवन के तौर तरीके बदलने होगे, अपनी छुटिट्यों का हर एक दिन अपने कालेज के आसपास वाले गाँव में बिताना होगा ओर जो लोग शिक्षा प्राप्त कर चुके हो या शिक्षा न ले रहे हो उन्हे गाँवों में बसना होगा और स्वराज की स्थापना एवं जनता की भलाई के लिये गाँवों में जाकर जमकर बैठना होगा, लेकिन उनके मालिक या उपकारकर्ताओं की तरह नही बल्की उनके विन्रम सेवकों की तरह, उनके रहन–सहन के ढ़ग को बदलना होगा लेकिन भावना का कोई उपयोग नही करना हैं।

भारत की आहत आत्मा के लिये शन्तिदायी लेप लेकर जाना होगा भगवान के दूतों की तरह उनके बीच में रहना होगा।

युवाओं को ग्राम आन्दोलन को आगे बढ़ना होगा और ग्राम वासियों की सेवा मे लग जाना होगा, गावों के साथ स्वस्थप्रद सम्पर्क स्थापित करना होगा।

इसमें बहुत सी कठिनाईयां आयेगी लेकिन इन कठिनाईयों को देखकर हतोत्साहित नही होना होगा। यहा तक कि गाँव वालों की उदासीनता के होते हुए भी युवाओं को काम करना होगा। अपने मिशन और खुद में विश्वास रखना होगा। वह अपनी उपास्थित से गाँवों को अधिक प्रिय एवं रहने योग्य बनाना होगा।

उन्हे ऐसी सेवा देनी हेागी जो गाँव वालों के अनुकूल हो।युवकों को गाँवों में स्वयं परिश्रम करके साफ–सुथरा रखनें की जिम्मेदारी लेनी होगी। निरक्षरता को

दूर करना होगा। उन्हे गाँव वालों की आवश्यकताओं के आधार पर सेवा देंना हो ओर उनके लिये साधन जुटना होगा, उनको भी कुछ काम सीखाना होगा जैसे सूत कातना, कपड़े बुनना, गाँव की सफाई करना आदि। तथा इनके महत्व को भी गाँव वालों को बताना होगा।

स्वयं भंगी का काम करना होगा और उनको भी इसको सीखाना होगा तथा इसका महत्व बताना होगा। ग्राम सेवा का व्रत उन्हें लेना होगा।

प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षित करना होगा, उनको शिक्षा का महत्व बताना होगा, उनको स्त्रियों के समान अधिकार के बारे में समझाना होगा, प्रत्येक स्त्री को मां, बहन के रूप में समझना होगा और उनके प्रति आदर भाव रखना होगा।

युवाओं की भाषा ऐसी हों जिसे सभी गाँव वाले समझ सके। उन्हें अपनी मातृभाषा के महत्व को बताना चाहिये तथा उस क्षेत्र की भी भाषा सीखना होगा।

और आर्थिक समानता का प्रचार करना होगा। युवाओं को स्वयं संस्कारवान हेाना चाहिये और अपने देश में सुसंस्कृत वातावरण पैदा करना चाहिए। शरिरिक श्रम के प्रति सदा सम्मन रखना होगा, अपने मन और शरीर को पवित्र रखना हेागा, तथा वेद,शास्त्रों एवं गुरूजनों की बतायी बातों का दैनिक जीवन में उतार न होगा।

जो युवा भविष्य के विधाता हेाने का दावा करते हैं। राष्ट्र का नमक –रक्षक तत्व हेाना चाहिये। यह अनुशासित नियमित जीवन ही राष्ट्र को सम्पूर्ण विनाश से बचा सकता हैं। और इस भूमिका को आज के युवाओं को स्वीकार करनी होगी। तभी हमारा गाँवो का देश भारत एवं ग्रामीण सभ्यता बच सकती हैं।

गांधीजी का मानना था कि लगभग एक हजार वर्ष की पराधीनता के कारण राष्ट्र में अनेक विकृतियां उत्पन्न हुई हैं। युवाओं को अपनी मूल विशेषताओं को सुरक्षित रखते हुए, विकृतियों को दूर करके राष्ट्रीय पुनःनिर्माण के व्यापक संदर्भ में सक्रिय रहना होगा। राष्ट्रीय पुनःनिर्माण का कार्य बहुआयामी है। यह कार्य सत्ता के माध्यम से नहीं अपितु व्यक्ति निर्माण एवं समाज परिवर्तन से होगा। युवा शक्ति राष्ट्र शक्ति बनकर समाज में नियंत्रक के रूप में जब उभर कर आयेगी, तब इन समस्याओं का समाधान होगा।

राष्ट्रीय पुनःनिर्माण का कार्य मूलतः रचनात्मक है। इसके लिये इमानदारी, परिश्रमशीलता, समाजिक संवेदनशीलता, राष्ट्रीयता एवं त्याग आदि के गुण व्यक्ति में रहे, जिससे वह स्वयं प्रेरणा से राष्ट्र हित को ध्यान में रखकर कार्य करे। वास्तव में रचनात्मक कार्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना हैं, जिनके बलपर अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन लाया जा सके।

महिलाओं की सहभगिता

गाँधी जी यह मानते थे कि अहिंसा के आधार वाली योजानाओं में स्त्री को अपने भाग्य निमार्ण करने का उतना ही अधिकार हैं जितना पूरूषेा को हैं। अहिंसक समाज में प्रत्येक अधिकार कर्तव्य–पालन से उत्पन्न होता हैं।

वर्तमान समय में महिलायें पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर विकास की प्रक्रिया एवं राष्ट्र निर्माण के कार्य में संलग्न है। अब ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ पर वे महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन न कर रही हों। किन्तु अभी भी समाज में उनके प्रति पुरुषों से नीचे स्तर प्रदान किया जा रहा है। महिलाओं के साथ हो रही असमानता की यह भावना राष्ट्र के विकास में बाधक है।

एक आदर्श समाज के निमार्ण में महिलाओं की सभी क्षेत्रों में सहभागिता अनिवार्य हैं। बिना महिलाओं की सक्रिय सहभागिता के कोई भी राष्ट्र उन्नति नही कर सकता है। गाँधी जी के अनुसार महिलाओं की सहभागिता निम्नांकित क्षेत्रों में अपेक्षित है–

1– सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता –:

मानवता के विकास में महिलाओं की सशक्त भागीदारी होती है।क्योंकि महिलायें अहिंसा, प्रेम त्याग का प्रतीक हैं तमाम कष्ट सहने के बाद भी इस समाज को प्यार देती हैं और मानवता को आगे बढ़ती हैं इसलिये सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी प्रमुख हैं।

समाज की पहली इकाई परिवार होती है। परिवार के निमार्ण मे महिलाओं की बराबर की भागीदारी होती है, वो माँ की भूमिका बच्चों के प्रति या बहन की भूमिका भाई के प्रति, पुत्री की भूमिका अपने माँ–बाप के प्रति, तथा पत्नी की भूमिका अपने पति के प्रति निभाती हैं, और परिवार को चलाने का काम भी करती है। बिना महिलाओं की भूमिका के परिवार चलाना सम्भव नहीं हैं न ही परिवार का निमार्ण हो सकता हैं। मानव जाति के विकास से लेकर उसके पालन–पोषण तथा उन्नत करने की भूमिका महिलायें ही निभाती हैं। इसीलिये उन्हें पुरूष की अर्द्धांगिनी कहा जाता हैं।

किसी गाँव, प्रदेश या राष्ट्र का निमार्ण बिना महिलाओं के सम्भव नही हैं, क्योंकि इनके निमार्ण में इस आधी आबादी की भूमिका प्रमुख हैं चाहे धार्मिक, शैक्षिक

अथवा सांस्कृतिक क्षेत्र हो बिना इस आधी आबादी की सहभगिता के राष्ट्र का निमार्ण सम्भव नही हैं।

2– आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता–:

भारत में अभी भी इस आधी आबादी का बड़ा भाग घर के औपचारिक कार्यों तक सीमित होने कारण अपना सम्पूर्ण नहीं दे पा रहा है।

गाँवों का स्वावलम्बी बनाने में महिलायें भी पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर बराबर की भूमिका निभा रही हैं। चाहे वो किसी कृषि हो अथवा लघु–कुटीर उद्योग हो सब में इस आधी आबादी की बराबर की भूमिका हैं।

जो समाज इस आधी आबादी की ऊर्जा का प्रयोग नही करेगा वह समाज पहुत पीछे छूट जायेगा। क्योंकि यह कृषि क्षेत्र में कटाई, निराई से लेकर सभी कार्यो में बराबर की भूमिका निभाती हैं तथा पशु पालन में भी प्रमुख इनकी प्रमुख हैं।

लघु–कुटीर उद्योगों में श्रमिकों की भूमिका से इन उद्योगों को चलाने में बराबर की भूमिका निभाती हैं। और समाज के आर्थिक विकास में महिलाओं को अब बराबर की भूमिका निभानी चाहिये,तथा समाज को भी महिलाओं को आगे आने के लिये प्रेरित करना चाहिये। तभी हमारे गाँव पूर्ा रूप से स्वावलम्बी बन सकते हैं तभी सशक्त भारत का निमार्ण सम्भव हैं।

3–राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता–:

राजनैतिक क्षेत्रों में भी महिलाओं की बराबर भागीदारी होनी चाहिये,इनका भी बराबर का प्रतिनिधत्व होना चाहिये क्योंकि कोई भी आन्दोलन या सामाजिक बदलाव इस आधी आबादी के भागीदारी के बिना सम्भव नहीं है। योजना निमार्ण से लेकर उनका क्रियांवयन तक इनकी प्रमुख भूमिका हो सकती हैं।

इनको भी नेतृत्व करने का उतना ही अधिकार हैं जितना पुरूषेां को है। गाँधी जी का मानना था कि राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की बिना सहभागिता के एक आदर्श स्वराज्य की कल्पना भी नही की जा सकती हैं। यदि सत्य, अहिंसा पर आधारित पूर्ण स्वराज्य का निमार्ण करना हैं तो महिलाओं को उतने ही अधिकार देने चाहिये जितने पुरूषों को है एवं समाज के हर क्षेत्र में महिलाओं के साथ बिना भेदभाव के पूर्ण सहभागिता सुनिश्चित करानी चाहिये, तभी सही अर्थो में स्वराज्य का सपना साकार हो सकता हैं।

73वीं संविधान संशोधन के द्वारा 1993 मं पंचायतों के त्रिस्तरीय संगठनों में एक तिहाई जनप्रतिनिधियों का पद महिलाओं के आरक्षित कर दिया गया है, किन्तु अभी इस दिशा और सक्रिय प्रयस भी आवश्यकता है।

स्वदेशी की भावना

स्वदेशी के मंत्र की अखिल जगाकर गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन का संचालन किया था। उनके अनुसार स्वदेशी की एक ब्यापक व्याख्या यह हैं कि विदेशी वस्तुओं को छोड़कर सारी वस्तुऐं देश की बनी हुई इस्तेमाल की जायें। देशी वस्तुओ का उपयोग देश के उद्योगों की रक्षाके लिये बहुत जरूर हैं खासतौर पर उन उद्योगो की रक्षा के लिए जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा। यह भावना हमेशा हर देशवासी के मन मे जगानी होगी।

स्वदेशी उपासक अपने निकट के पड़ोसियों की सेवा को प्रथम कर्तव्य मानकर उसमें अपने आप को समर्पित कर देगा क्योंकि अपने पड़ोसियेां की शुद्ध सेवा चीज ही ऐसी हैं कि उससे दूर वालो की कुसेवा हरगिज नही हेा सकती हैं। जिसे हमें अपने मन में अकिंत करलेना चाहिये।

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि

"स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः"

गांधी जी का कहना था कि इसका अर्थ जरूर ऐसा किया जा सकता हैं कि स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाये तो अच्छा हैं, परदेश तो भयानक ही हैं। यह स्वधर्म का अर्थ स्वदेशी हैं। और स्वदेशी में किसी भी प्रकार के स्वार्थ की भावना नही हेानी चाहिये, स्वदेशी अपने शुद्धतम रूप में परमार्थ की पराकाष्ठा हैं।

लोगों को अपने हाथ से बुने हुए खादी के कपड़े तथा ग्रामोंद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये जिससे हमारे करोड़ों भूखे लोगों को जिन्दा रख सकता हैं वही बेरोजगारी, दरिद्रता,और तमाम तरीके की समस्याओं से निदान मिल सकता हैं। गांधी जी के अनुसार समाज के प्रति स्वदेशी धर्मपालन में खादी पहला कदम हैं। हमें अपने चारों ओर की परिस्थितियों का सावधानी से अध्ययन करके और स्थानीय माल दूसरे जगह की बनी हुई वस्तुओं से घटियां या मंहगा होने पर भी उसे प्राथमिकता देकर खरीद कर प्रयोग करना चाहिए। स्थानीय चीजों को दोषों के कारण छोड़कर विदेशी वस्तुओं को न अपनाये।

परन्तु ऐसी चीजें जिन्हे बनाने में देश का अधिक धन एवं समय बरबाद हो ऐसी चीजों को सिर्फ विदेशी होने के नाते अस्वीकार करना अनुकूलता नही हैं।

जिसके मन में स्वदेशी भावना हेाती हैं, जो स्वदेशी का सच्चा उपासक हैं।

वह कभी विदेशियों के प्रति अपने मन में दूर्भाव नही लायेगा। और संसार मे।किसी के प्रति भेदभाव नही रखेगा। क्योंकि स्वदेशी धर्म घृणा धर्म नही हैं। यह निःस्वार्थ सेवा का सिद्धांत हैं। जिसकी जड़ शुद्धतम अहिंसा अथार्त प्रेम हैं।

आधुनिक परिदृश्य में भी राष्ट्र के उत्थान में स्वदेशी की भावना उतनी ही उपयोगी है, जितनी गांधी जी के समय में थी। चीन में सस्ते मूल्य की वस्तुओं के प्रति आकर्षण ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

स्वावलम्बन एवं सहयोग

स्वावलम्बन एवं सहयोग परस्पर पूरक हैं। एकके बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है।

गाँव को अगर स्वावलम्बी बनाना है तो आपसी सहयोग जरूरी हैं क्योंकि समाज की आवश्यक वस्तुओं के निमार्ण के लिये उपयोगी सभी कच्चा माल गाँवों में पैदा होता हैं। और इस कच्चे माल को पक्के माल के रूप में गाँव में ही तैयार कर लेना चाहिये एवं समस्त यन्त्रों पर समाज का अधिकार होना चाहिये। उत्पादन और अन्तिम वितरण के बीच में कोई दलाल नही होना चाहिये।

अहिंसा के आधार पर खड़ा समाज दलालो मारफत काम नही कर सकता। सबको खाना मिलना चाहिये, सबको काम करना चाहिये।

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की योजना सम्मिलित परिवार के ढ़ग पर आधारित होनी चाहिये।

इससे साफ होता हैं कि बिना सहयोग के स्वावलम्बन सम्भव नही हें, क्योंकि खेतों में कटाई, बुवाई,जुताई आदि एक व्यकित अकेले नही कर सकता हैं हैं। इसे करने के लिये सहयाग लेना पड़ता हैं। कोई भी लघु–कुटीर उद्योग भी बिना आपसी सहयोग के चल ही नही सकता हैं। जैसे खादी के कपड़े के निर्माण में कपास उगाने से लेकर सूत कातने तथा कपड़ा बुनने तक और उसे बेचने तक बहुत सारे लोगों की आवश्यकता होती हैं। और यह कार्य बिना आपसी सहयोग के सम्भव नही हैं। वही गाँवों की रक्षा से लेकर विकास तक सभी योजनाओं के निमार्ण तथा उनके क्रियान्वयन के लिये आपसी सहयोग अवाश्यक हैं। तभी स्वराज की कल्पना पूर्ण हो सकती हें।

क्योंकि यदि गाँवों को आत्मनिर्भर बनान हैं, तो लोगों को संगठित करना होगा कयोंकि बिना संगठन के हम कुछ नही कर सकते हैं।

और यही सहयोग गाँव एवं राष्ट्र के विकास को आगे बढ़ता है।

और यह सहयोग उत्पादन तथा उपभोग द्वारा निर्धारित होता हैं। इसलिये जितना भी उत्पादन हो वह समूहिक हो और जाति–पात का भेद–भाव को समाप्त कर उपभेग भी सामूहिक होना चाहिऐं।

यही सासमूहिकता स्वावलम्बन का आधार है और इसी आधार पर गाँव व राष्ट्र आत्म निर्भर हो सकते हैं। ओर इसका आधार सत्य,अहिसा, प्रेम और त्याग की भावना हैं इसी भावना के द्वारा ही गाँव को आत्म निर्भर एवं स्वावलम्बी बनाया जा सकता हैं।

अतः स्वावलम्बन ओर सहयोग के बिना गाँवो का विकास करना सम्भव नही हैं।

ग्राम एवं राष्ट्र

गांधी जी का मानना था कि ग्रामों से राष्ट्र का निमार्ण होता हैं, ग्राम ही किसी राष्ट्र का आघार होते हैं,ग्राम ही किसी राष्ट्र की मुल इकाई हैं। गाँव ही प्राथमिक उत्पादक की भूमिका निभाते है, गाँव ही किसी राष्ट्र के विकास का आधार होते है, गाँव से ही राष्ट्र की पहचान होती हैं, ओर किसी भी राष्ट्र की सभ्यता गाँवों से ही पहचानी जाती हैं। गाँधी जी कहते है कि राष्ट्र जितने प्राचीन है उतने ही प्राचीन हमारे गाँव हैं। किसी राष्ट्र को उन्नत या विकास करना हैं तो उस देश के गाँव पूर्णरूप से स्वावलम्बी बनान चाहियें वे समस्त आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करें और आपसी सहयोग एवं सहभागिता के आधार पर समस्त उत्पादन एवं उपभोग को निर्धारित करें।

ग्राम अपनी विकास योजनाओं का निमार्ण स्वयं करें, गाँवों की अपनी पंचायतें हों,बच्चों के स्कूल हों, अपनी न्याय व्यवस्था हो, नाटक शाला हो पशुओं के लिये चारागाह हों, तथा अपने निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो गावों के झगड़ों को आपसी सहयोग से हल कर लिया जायें। इस तरीके समस्त जरूरतें गाँव में ही हल हो जाये। गाँधी जी ने पाँच स्तरीय स्थानीय व्यवस्था की परिक्लपना की थी जो कि ग्राम पंचायत, तालुक पंचायत,जिला पंचायत प्रान्तीय पंचायत और सर्वदेशीय पंचायत का एक पद सोपनीय ढ़ाचा हैं। जिसमें प्रशासनिक व्यावस्था का स्वरूप भी पिरामिड नुमा रखा जाये। इसके निम्न स्तर पर देश के विभिन्न ग्रामीण समुदायों से युक्त विस्तृत आधार होगा, उच्च स्तरीय पंचायतों के कार्य होगे – निम्न स्तरीय पंचायतों का आवश्यक तथा विशिष्ट निर्देशन करना और ग्राम पंचायतों की क्रियाओं को समन्वित करना ताकि समाज सेवा और प्रशासन समबन्धी उनकी सोच में वृद्धि हो सके। परन्तु इसमें ग्राम पंचायत को ही राष्ट्रीय प्रशसान की मुल इकाई माना गया जो कि केन्द्रिय पंचायत को आदेश देने के लिये सक्षम होगी न कि केन्द्र राज्य को आदेश देगा। ग्राम ही प्रशासन की वास्तविक एवं क्रियाशील इकाई होगी।

राष्ट्र केवल संरक्षक की भूमिका निभायें बाकी समस्त निर्णय लेने एवं केन्द्र को आदेश देना का अधिकार ग्राम पंचायत के होगें।

ग्राम, भारत एवं विश्व

ग्राम ही देश की मूल इकाई है तथा गाँव ही समस्त प्रकार के उत्पादन करता है,और जब गाँव पूर्ण रूप से आत्म निर्भर एवं स्वावलम्बी हो जायेगें तभी भारत का विकास हो सकता हैं क्योंकि भारत गाँवों का देश हैं, इस देश की पहचान गाँवों से हैं। और देश की सभ्यता की पहचान यहां के गाँवों से होती है। यहा के गाँव इतने ही प्राचीन हैं जितना यह देश हैं। मानवता यहा का धर्म हैं,यह की सांस्कृति ऐसी विशाल हैं कि समस्त विश्व भी संस्कृतियों को अपने आप में समेट लेती है। जिसका आधार सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय हैं।

आत्म संयम व आत्म शासन की भावना है,गाँवों में सामूहिकता एवं सहयोग की भावना पायी जाती है।

यहा के सामाजिक मूल्य सहानुभूति, सदाचार, एवं उपकार की भावना प्रत्येक गाँव में पायी जाती है।

शारीरिक श्रम एवं आपसी सहयोग से उत्पादन प्रक्रिया को चलायें यानि सह उत्पादन हो तो इससे सामाजिकता के गुणों का विकास होगा और स्वदेशी की भावना को आगे बढ़ाते हुए पूरे देश का आर्थिक, सामाजिक, नैतिक विकास होगा।

गाँधी जी ने कहा था कि मेरा देश प्रेम दूसरें देशों के बहिस्कार का भाव नही है। इसका उद्देश्य यह नही है कि किसी दूसरे राष्ट्र को हानि पहुचायी जायें।

और भारत इसलिये बलशाली बने कि दूनिया की भलाई के लिये वह स्वेच्छा पूर्ण और शुद्ध बलिदान दे सके शुद्ध होने पर व्यक्ति परिवार के लिये, परिवार गाँव लिये,गाँव जिले के लिये, जिला प्रान्त के लिये, प्रान्त राष्ट्र के लिये और राष्ट्र सारे संसार के लिये आपने आप को कुर्बान करता हैं।

पूर्ण स्वराज्य की कल्पना पर गाँधी जी ने कहा था कि मेरी राय में अलग–थलग

स्वतंत्रता की नही बल्कि स्वस्थ और गौरव पूर्ण परस्परावलम्बन की है।

और इसके माध्यम से सारे विश्व की सेवा करेंगे।

राज्य द्वारा बनायी गयी सीमाओं के बाहर अपने पड़ोसियों के सेवा करने की कोई मर्यादा नही हैं ईश्वर ने उन सीमाओं का कभी निमार्ण नही किया हैं।

और आन्तर–राष्ट्रीय संघ तभी बनेगा जब उसे बनाने वाले छोटे–बड़े सभी राष्ट्र पुर्ण स्वतंत्र हो जिस हद तक सम्बंधित राष्ट्रों ने अहिंसा को पचा लिया होगा उसी हद तक वे स्वतंत्र होगे। एक बात निश्चित है अहिंसा के आधार पर निर्मित समाज छोटे –छोटे राष्ट्र अपने को बड़े–से बड़ा महसूस करेगा।

उंच–नीच का व्यवहार बिल्कुल मिट जायेगा।

और विश्व में एक देश दूसरे देश का शोषण करना बंद कर देगा और सम्पूर्ण विश्व में भाई चारे का संदेश प्रसारित होगा विश्व से हिंसा को समाप्त किया जा सकें हम पूरे विश्व में विश्व शान्ति का संदेश दे सके ऐसा ही विकसित एवं शक्तिशाली भारत का निमार्ण होना आवश्यक है।

क्या करें तथा कैसे करें बापू के सपनों को साकार?
(वैचारिक आधार)

बापू के सपनों को साकार करने के लिये हमें निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहियें।

1— **सत्य**— सत्य हमारे सारें व्रतों का अधिष्ठान हैं। ध्रुवतारा हैं। इसको समाने रखकर जीवन की दशा निर्धारित करते हैं। भगवान ही सत्य है, और सत्य ही भगवान हैं।

सामाजिक मूल्य के रूप में जब सत्य की हम उपसना करते हैं, तो ध्रुव सत्य हमारे लिये यह है कि दूसरे व्यक्ति और मैं एक हूँ। दुसरों के साथ मेरी एकता ही सामाजिकता का आधार हैं। दूसरों के साथ मेरी एकता मेरी नैतिकता का आधार हैं दूसरों के साथ मेरी एकता मेरे सदाचार का आधार हैं। सदाचार का आधार मेरे नैतिकता का आधार मनुष्य की सामाजिकता का आधार दूसारों के साथ पारमार्थिक एकता हैं। पारमार्थिक से मतलब जो निरपेक्ष हैं सापेक्ष नही। जिसे सिद्ध नही करना पड़ता।यही सामाजिक दृष्टि से सत्य का अर्थ हैं और इसे ही हम अपने जीवन का ध्रुवतारा समझें।

2— **अहिंसा** — सत्य के बाद इसी के आधार पर अहिंसा आती हैं गॉधी ने कहा था कि " निकला तो सत्य की खोज में लेकिन अहिंसा मिल गयी,"। एक दरवाजा मिला। वह बन्द था चाभी अहिंसा थी और जब तक उस दरवाजे में से नही जाता सत्य का दर्शन मुझे नही हो सकता हैं।' सुख देने से सुख होता हैं दुःख देने से दुःख होता हैं 'अहिंसा आचरण में कैसे प्रगट होगी ? हम सुख ही सुख बोते जायेगे, तो समाज में सुख की फसल होगी।' जो तेरे लिये कॉटा लगता हैं, उसके लिये तू फूल लगाता चला जा।'

जो हमारे साथ बुरा ब्यवहार करे और शत्रुता रखे उसके साथ भी आप अच्छा ब्यवहार करें और शत्रु को भी गले लगाये।

यही अहिंसा दर्शन कहलाता हैं अहिंसा ओर सदाचार की बुनियाद प्रेममूलक होती हैं और तादात्म्य में उसकी परिणति होती हैं, इसलिये दूसरा सिद्धान्त,दूसरा व्रत अहिंसा का हें। इस में भव—रूप शक्ति होती हैं।

सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा व्यक्त होती हैं – सह उत्पादन ओर सहयोगी उत्पादन के रूप में। सह–उत्पादन और सम वितरण। अर्थात हम साथ उपजायेंगे और साथ खायेंगे। यहॉ सह जीवन सह भोज के रूप में व्यक्त होता हैं। सहभोज का अर्थ केवल भोजन करना नही हैं। इसमें सहयोग आ गया, इसमें सामुदायिक उत्पादन आ गया। आप कितने कदम इस दिशा में रखेगें, वह आपकी सामर्थ्य की बात हैं।

जब अहिंसा को हम अपने जीवन का सिद्धान्त मान लेते हैं, तो वह हमारे सारे जीवन मे व्याप्त हो जानी चाहिए।

3– अस्तेय– हमें दूसरें के जीवन में सहायता पहुचॉनी है, दूसरेां के जीवन में रूकावट नही ड़ालनी है। यही अहिंसा अस्तेय के रूप में प्रगट होती हैं। अस्तेय का अर्थ केवल इतना ही नही है कि मैं चोरी ना करूॅ, बल्कि उसे पाने की इच्छा भी नही करनी चाहिये। किसी की कोई प्रिय वस्तु देखकर चोरी न करें और इसे पाने की इच्छा भी मत रखें, यदि लेने की इच्छा रहती है और चितंन हो रहा है तो फिर अस्तेय व्रत का पालन नही हो रहा है। क्योंकि अस्तेय में निहित स्वार्थ न हो। इसलिये अस्तेय एक व्रत के रूप में प्रगट होता है। नहीं हो सकता।

मनुष्य के आचरण में और उसकी वृति में हमेशा अस्तेय रहेगा। परन्तु उसमें विरोध न होगा। अस्तेय रहेगा इसलिये वह साधक है, लेकिन उसमें विरोध नही होना चाहिऐ। इसलिये अस्तेय वृत का पालन करना चाहिये तभी एक अच्छे समाज का निमार्ण हो सकता है।

4–अपरिग्रह– अस्तेय और अपरिग्रह प्रायः साथ–साथ लिये जाते हैं। अपरिग्रह का अर्थ केवल इतना नही है। कि अपनी जरूरत से ज्यादा चीजें नहीं रखते हैं, बल्कि अपरिग्रह वृति का अर्थ यह है कि अपनी जरूरत कर चीज भी जो में रखता हूॅ वह अपने स्वामित्व के लिये नही रखता ओर यह अपरिग्रह,असंग्रह का अंतिम विचार है। अस्तेय से असंग्रह आता है। अस्तेय के लिये इतना काफी हैं कि कोई दूसारेां की वस्तु का हरण नही करता लेकिन अपरिग्रह इससे एक कदम आगे जाता हैं और अपरिग्रह हमें सीखाता है कि जो हमारा शरीर है, उस पर हमारा अधिकार नही है बल्कि इस समाज का अधिकार है। यदि हम परमार्थी है तो समाज के लिये हमें अपने शरीर का भी त्याग करना चाहिए।

5–ट्रस्टीशिप– आप के पास जो धन है वह समाज के लिये है, यह समझकर वह धन बढ़ाते ही चले जाओ। समाज के लिये है तो समाज के लिये बढ़ाओ। परम्परा और परिस्थिति से जो धन आप को प्राप्त हो गया है, उसे समाज का समझकर जल्दी –से –जल्दी मुक्त हो जाओं नही तो ट्रस्टीशिप का कोई अर्थ

नही है, ओर व्यक्तिगत परिग्रह,व्यक्तिगत सग्रह निषिद्ध है। तो सर्वजानिक सग्रह कम निषिद्ध नही है।

ट्रस्टीशिप में दो पहलू है पहला हैं संक्रमण काल का पहलू, संक्रमण काल के लिये यह व्याख्या है – पूँजीवादी समाज –व्यवास्था से मिं श्रमनिष्ठ समाज व्यवास्था की ओर कदम बढ़ना है। इसके लिये सग्रह के विर्सजन की आवश्यकता हैं। सग्रह का यह विसर्जन वृत निष्ठा से होना चाहिऐ।

यानि उस प्रक्रिया में व्यक्ति का शुद्धिकरण होना चाहियें।क्रान्ति की प्रक्रिया में व्यक्ति के शुद्धिकरण की व्यक्ति की चितशुद्धि की योजना 'हृदय–परिवर्तन 'कहलाती है।

और जिन लोगों को सम्पति विरासत या कानून से मिल गयी है। या खरीदी भी हो अथवा कमा भी ली हो उनसे भी गाँधी जी कहते है कि इसे अपनी मत समझों समाज की धरोवर या थाती समझो, और तुम्हे यह चिन्ता होनी चाहिऐ कि कब मै यह सम्पति समाज को लौटा दूँ।

यह संक्रमण कालीन पहलू धनिकों के लिये,मालिकों के लिये सम्पति वालों के लिये गाँधी जी के ट्रस्टीशिप का यही अर्थ है कि उन्हे संग्रह का विसर्जन करना है।

ट्रस्टीशिप का दूसरा पहलू यह है कि केवल धनिक ही ट्रस्टी नही है श्रमिक भी ट्रस्टीशिप है। बहुत सम्पति,धन या संग्रह वाला ही अल्प संग्रह वाला भी ट्रस्टी है। उसे भी अपने आप को ट्रस्टी ही मान ना चाहिऐ, जहा वह काम करता हैं वह काम समाज का है उस काम के उपकरण भी समाज के है उसके अपने नही है उनका यह ट्रस्टी न्यासी हैं।

लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में भी मजदूर जितना उत्पादन करें उतने उत्पादन को भी वह अपने आप को मालिक न माने।

स्तेन एवं सः भगवद्गीता में भी कहा गया है कि सग्रह चोरी है। इसके निराकरण के लिये कहा गया है कि तुम केवल इसके रखवालें हो आप जितनी जल्दी हो सके समाज के लिये खर्च कर दो।

मजदूरी से जितना कमाते है और इस कमाई हुई रोटी पर केवल आपका ही अधिकार नही, भूख अधिकार है रोटी भूख के लिये, तुम्हारे पेट मे भूख है इसलिये भूख का अधिकार रोटी पर आवश्य है। परन्तु पड़ोस में कोई भूखा हैं तो उसे बॉट दो, तुम्हारे पास आधी रोटी है तो उस आधी को भी बॉट दो।

गरीब आदमी या अल्प संग्रहवान व्यक्ति का भी अपनी मेहनत की उपज पर,और अपने मेहनत के उपकरणों पर भी स्वामित्व नही माना जाता है। इसी का नाम है ट्रस्टीशिप।

"विश्वस्तयोग", यह शाश्वत ट्रस्टीशिप है।

6–संयोजन के तीन कदम– दूर्भिक्ष में से प्राथमिक संपनन्ता की तरफ पहले जाना होता है, इसलिये संयोजन का पहला कदम निर्वाह है।इसलिये निर्वाह का सबसे पहले संयोजन होना चाहिये। जो बिपन्न है उसकी प्राथमिक आवश्यकताये पूरी होनी चाहिऐ, भूखे का रोटी मिलनी चाहिये नंगे को वस्त्र मिलना चाहिऐ लेकिन भीख के रूप में नही।

दूसरे कदम के रूप में विपुलता आवश्य होनी चाहिऐ ताकि बटवारे के समय झंगड़ा न हो विपुल उत्पादन के साथ –साथ सम–वितरण समाजवाद कहलाता है। तीसरा बन्धुत्व संयोजन है जो समाज मे भाई चारा एवं प्रेम का रास्ता दिखाता है और यहा अपरिग्रह और ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त एक हो जाता है।

दोनों की कसौटी यही है कि सग्रह न करें।

7–ब्रह्चर्य – ब्रह्चर्य वृत का पालन करे स्त्री–पूरूष के लिये एक सा ब्रह्चर्य हो। तभी स्त्री–पुरूष का समान मनुष्यत्व सह–नागरिकता के रूप में चरित्रार्थ हो सकता है। जो नैतिक स्थान पुरूषों को जीवन में मिला हैं वही नैतिक स्थान स्त्रियों को मिलना हैं।

ब्रह्चर्य जैसे पुरूषों के जीवन में मुख्य है वैसे ही स्त्री जीवन के लिये माना जायें वैधव्य या तो समाज की भूमिका पर आ जाना चाहिऐ या फिर विधवा और विधुर की अलग–अलग कक्षा में न हो बल्की ये दोनों समान भूमिका में माने जाने चाहिऐ।

अतः स्त्री पूरूष निष्ठ न रहे, तत्वनिष्ठ बने पुरूष अपने सिद्धान्त के लिये स्त्री का त्याग करता है तो उसका गौरव होता है। स्त्री भी मीराबाई की तरह भगवान के लिये अपने पति का त्याग करें। सिद्धान्त में पुरूष का त्याग करें उसका गौरव होना चाहिये।स्त्री व्यक्ति निष्ठ न होकर तत्व निष्ठ होगी।

8–लोक संख्या– गाँधी जी ने अधिक जनसंख्या का कभी हानिकारक नही मना उनकी राय में उचित भूमि व्यवस्था सुधरी हुई खेती और सहायक उद्योगों से देश के लोगों का पालन –पोषण हो सकता हें। और गर्भ निरोधक साधनों के खिलाफ थे। नैतिक संयम के समर्थक थें।

और लोक संख्या को कम करना है हमें गरीबी का निराकरण करना होगा और साथ–साथ संस्कृतिक विकास भी करना होगा गरीबी का निराकरण होगा तो संतानो।की संख्या कम होगी। संस्कृतिक विकास जिनका अधिक होगा उनका जीवन में संयम भी उतना अधिक होगा तब तत्व प्रधान होगा संख्या प्रधान नही होगा उसके साथ गुणों का भी विकास होगा।

9–शरीर–श्रम– शरीर को हम वृत का रूप देना स्वीकार करें हमारा उद्देश्य यह हो कि आज का धन निष्ठ,सम्पति निष्ठ समाज श्रम निष्ठ समाज मे।परिवर्तित हो जाये।

स्माज जो प्रतिष्ठित है, उसे श्रम कराना चाहिऐ, श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये ओर परिर्वतन की भूमिका बनाने के लिये –वर्ग निराकरण होगा –बर्ग समन्वय हरगिज नही होगा।

वर्ग निराकरण की प्रक्रिया का आरम्भ वर्ग परिर्वतन स`होता हे वर्ग परिवर्तन का आचरण हर व्यक्ति को करना है इसलिये आज जो श्रम नही करते है, उन्हे श्रम करना चाहिऐ ओर उत्पादक परिश्रम करना चाहिऐ उनका उत्पादक परिश्रम श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये वृत के रूप में हो।

ओर आज काम प्रतिष्ठत है, आराम प्रतिष्ठत हैं। हमें आराम की प्रतिष्ठा घटाने के लिये काम की प्रतिष्ठा को बढ़ाना चाहिये। गाँधी जी ही नही जवाहर लाल जी का भी नारा है– आराम हराम है। यही चींज गाँधी शरीर श्रमक` वृत के रूप में चाहिऐ आराम को अप्रतिष्ठत कर काम को प्रतिष्ठत बना दें।

इसलिये जो व्यक्ति काम करता है, वही अराम का अधिकारी होगा। और जो आराम का अधिकारी हे उसे काम करना पड़ेगा। ऐसा जब होगा तब श्रम निष्ठ समाज होगा।

10–अस्वाद– शरीर श्रम के बाद अस्वाद का वृत आता हैं, अस्वाद का एक सामाजिक अर्थ यह है कि जो मैं उत्पादन करता हूँ वह मेरे लिये नही बल्कि

सम्पूर्ण समाज के लिये होगा और ये अस्वाद एक सामाजिक प्रेरणा भी हैं और इसे हमें सामाजिक मूल्य बनाना चाहिऐ और हमे दूसरों को खिलाकर खाना चाहिऐ और दूसरों को खिलाने में आनन्द आये मेरा आनन्द यदि दूसरों को खिलाने में भी होना चाहिऐ क्योंकि आनन्द जब तक दूसरों की आखों में दिखायी नही देता तब तक वह पूरा नही होता। मनुष्य का स्वभाव है यह।उसे आप स्वाद की ओर लगा दीजिये तो अस्वाद भी सामाजिक मुल्य बन जायेगा।

11– सर्वधर्म सामानतत्व– सर्वधर्म समानत्व का अर्थ यह है हक सम्प्रदायों का निराकरण हो जाना चाहिऐ जो मनुष्य–मनुष्य में भेद करता हों वह धर्म नही है

मनुष्य–मनुष्य में जो अभेद की स्पस्टता करता है वही धर्म है। इस दृष्टि से सारे धर्म समान हो जाते है। ओर जब सारे धर्म समान हो जाते हैं। तो धर्म परिवर्तन निषिद्ध हो जाता है।

12–स्वदेशी– स्वदेशी एक ब्यापक व्याख्या यह हैं कि विदेशी वस्तुओं को छोड़कर सारी वस्तुऐं देश की बनी हुई इस्तेमाल की जायें। देशी वस्तुओ का उपयोग देश के उद्योगों की रक्षाके लिये बहुत जरूर हैं खासतौर पर उन उद्योगो

की रक्षा के जिनके बिना भारत दरिद्र हो जायेगा। यह भावना हमेशा हर देशवासी के मन मे जगानी होगी।

और स्वदेशी में किसी भी प्रकार के स्वार्थ की भावना नही होनी चाहिये, स्वदेशी अपने शुद्धतम रूप में परमार्थ की पररकाष्ठा हैं। लोगों को अपने हाथ से बुने हुए खादी के कपड़े तथा ग्रामोंद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये जो हमारे करोड़ों भूखे लोगों को जिन्दा रख सकता है। वही बेरोजगारी, दरिद्रता और तमाम तरीके की समस्याओं से निदान दिला सकता है।

समाज के प्रति स्वदेशी धर्मपालन में खादी पहला कदम हैं हमें अपने चारों ओर की परिस्थितियों का सावधानी से अध्ययन करके और स्थानीय माल दूसरे जगह की बनी हुई वस्तुओं में घटियां या मंहगा हो तभी उसे प्राथमिकता देकर खरीद कर प्रयोग करेगें। और पड़ोसियों की सहायता करने का प्रत्यन करे। स्थानीय चीजों को दूर करने की कोशिश न करे और दोषों के कारण उन्हे छोड़कर विदेशी वस्तुओं को न अपनायें।

उनका मानना था कि जिसके मन में स्वदेशी भावना होती हैं, जो स्वदेशी का सच्चा उपासक हैं वह कभी विदेशियों के प्रति अपने मन में दूर्भाव नही लायेगा। और संसार मे किसी के प्रति भेदभाव नही रखेगा। क्योंकि स्वदेशी धर्म घृणा का धर्म नहीं हैं। यह निःस्वार्थ सेवा का सिद्धांत हैं। जिसकी जड़ शुद्धतम अहिंसा अथार्त प्रेम है।

13– स्पर्श भावना– स्पर्श भावना में जाति निराकरण और अस्पृष्यता निवारण ये दो बाते आती हैं। जाति जन्म सिद्ध ही हो सकती है कर्म सिद्ध नही हो सकती है इसलिये जाति के निराकरण के लिए जन्मजात उच्चता और नीचता का निराकरण तभी होगा। जब जन्म की परिस्थिति में परिवर्तन होगा। जन्म की परिस्थिति का नाम विवाह हैं। इसके लिये सजातीय विवाह निषिद्ध करार देना होगा, तभी जाति निराकरण होगा। इसमें जबरदस्ती नही है। जाति भेद का निराकरण यदि करना है तो इतना कदम उठा लेना चाहिऐ ऐसा किये बिना अस्पृश्यता का पूर्ण निवारण नहीं हो सकता हैं। स्पर्श भावना एक विधायक वृत है कि हम किसी को अशुद्ध न माने न किसी मनुष्य के रक्त अशुद्ध मानें यही सही अर्थो में स्पर्श भावना है।

गाँधी जी ने कहा था कि हर एक के हाथ में झाड़ू होनी चाहिऐ हमे स्वयं भंगी की भूमिका निभानी चाहिये स्वयं साफ–सफाई करें और समस्त कार्य हमकों सामूहिक रूप से करने चाहिये ऐसे में उच्चता एवं नीचता समाप्त हो जायेगी।

गाँधी जी के सपनों का भारत बनाने के लिये इन्ही वृतों का पालन करना होगा तभी सही अर्थो मे स्वराज का सपना पूरा होगा।

ग्रामीण विकास के कार्यकर्ता के दायित्व
(क्रियात्मक आधार)

ग्रामोदय एक निरंतर चलने वाला कार्य है, अतः इसके काम में नवीनता एवं निरंतरता बनाये रखना चाहिए। बापू के सपनों का भारत इसी ग्रामोदय की प्रक्रिया के द्वारा आ पायेगा। इसके लिए निम्नांकित कदम उठाना आवश्यक है।

1. सत्य को ही ईश्वर का स्वरूप समझाकर उसका पालन करना चाहिये।
2. सत्य का पालक अहिंसा के बगैरा संभव नहीं है। अहिंसा के लिए सबके कल्याण, संवदेनशीलता एवं सहानुभूति का गहराई से अनुभव करना चाहिये।
3. आत्मिक बल की प्राप्ति के लिए ब्रम्हचर्य का पालन करना चाहिये।
4. समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष व हिंसा के स्थान पर सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह के अस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये।
5. नाम पाने के लिए नहीं बल्कि सबके कल्याण को लक्ष्य बनाकर कार्य करना चाहिये।
6. योजना वृत्ति को अपनाये अर्थात् सबमें कुछ गुण हैं उन गुणों को पहचानकर उन्हें उपयुक्त स्थल पर नियोजित करें।
7. स्वयं के विकास एवं ग्राम के विकास के लिए सामूहिक रूप से बैठकर दैनिक, मासिक वार्षिक एवं दीर्घकालिक योजनाओं का निर्माण करना चाहिए।
8. सर्वोदय अर्थात् सबके हित को प्राथमिकता देने से ग्रामीण विकास के कार्यकर्ता के प्रति सबका विश्वास जाग्रत होगा।
9. सामाजिक क्षेत्र में बिना किसी भेदभाव के महिला एवं पुरुष दोनों की सहभागिता के द्वारा समस्याओं का हल करना चाहिए।
10. "संगठन में शक्ति" का सूत्र सदैव ध्यान रखते हुए सबको संगठित रूप से आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

11. स्थानीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए आजीविका के नये–नये आयामों को सृजित करना चाहिए।

12. गांधी जी के पंच महाव्रतों को जीवन में धारण करते हुए आत्मिक शक्ति का विकास करना चाहिए जिससे कि कार्यकर्ता से लोग प्रेरित हो सकें।

13. समानता स्वतंत्रता एवं बंधुत्व के सिद्धांत का पालन करते हुए सबको समान अवसर उपलब्धता पर बल देना चाहिए।

14. निर्णय में सामूहिकता पर बल दिया जाना चाहिए तथा व्यक्तिगत निर्णय से बचना चाहिए।

15. पंचायतों के विकास के द्वारा ग्राम स्वराज एवं स्वावलम्बन को ग्राम विकास का आधार बनाकर काम करना चाहिए।

16. मानव विकास, सामाजिक न्याय, सामजिक समरसता एवं सामाजिक सामन्जस्य के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए।

17. शासन से लाभ के लिए ग्राम की पैरवी के लिए सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

18. गांव के विकास के लिए फैसिलटेटर का कार्य करना चाहिए।

19. कार्यकर्ता का व्यवहार सबके प्रति भेदभाव रहित होना चाहिए।